विषय-सूची

उत्तरार्ध

मङ्गलाचरणम्

येनेयं विविधा सृष्टिः ब्रह्मादिस्थावरान्तका ।
निर्ममे भूतकल्याण-सिद्ध्यर्थं जगदात्मना ॥ १ ॥
यश्चौषधिषु सर्वासु धातुषु सकलेषु च ।
व्यानशे विविधै रूपैः सर्वरोगहरैः स्वयम् ॥ २ ॥
तमहं शङ्कर वन्दे रसभूतं रसायनम ।
सकलेन्द्रियगुणातीतं भूमानं शान्तमव्ययम् ॥ ३ ॥
नत्वा गुरुवरं श्रीमद् राखालदास विश्रुतम् ।
अरिष्टासव नामेति ग्रन्थोऽयं तन्यते मया ॥ ४ ॥
यस्या देव्या मधुरमधुरं तर्पणं चेन्द्रियाणाम् ।
स्वान्तः ध्वान्तं शमयितुमलं स्तन्यमासेवितं मे ॥
तस्या मातुः गुरुकुलमिति लोकख्याति गतायाः ।
एषा स्वीयाकृति रविमला कीर्यते प्रश्रितेन ॥ ५ ॥

अथ च—

गच्छतः स्खलन क्वापि भवन्त्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥

प्रस्तावना

लेखक—

आयुर्वेद बृहस्पति साहित्याचार्य वैद्य घनानन्द जी पन्त विद्यार्णव

मैंने गुरुकुल में आसवारिष्ट कार्यालय देखा है। वैद्यराज श्री सत्यदेव जी ने अनेक वर्ष आसवारिष्ट निर्माण करने का अपना अनुभव तथा प्राचीन एवं अर्वाचीन शास्त्रीय ज्ञान विज्ञान का समन्वय कर असवारिष्टों पर यह पुस्तक लिखी है। इस से पूर्व भी गुरुकुल ने साहित्य में ठोस कार्य किये हैं।

चूर्ण आदि औषधों की अपेक्षा क्वाथ शीघ्र रस रक्तादि में प्रवेश कर अपना गुण करते हैं। परन्तु आसव-अरिष्ट पुराने होने पर भी द्रवरूप, अविकृत, तत्काल रसादि में प्रविष्ट होते हैं। उत्तेजक होने से इन से क्वाथ की अपेक्षा शीघ्र लाभ होता है।

इस पुस्तक में आसव-अरिष्टों के प्रकारों की परिभाषा, निर्माणविधि, निर्माणपात्र तथा उनकी शुद्धि, किस स्थान पर कैसे वातावरण में आसवारिष्ट बनाया जाए, मधुर द्रव्य क्या हों, कैसे हों, इनमें सुराबीज कितना कितना मिलाया जाए, लोह मण्डूर आदि धातुओं का मिश्रण किस प्रकार से किया जाए, कपूर कस्तूरी आदि मिलाने की विधि, सन्धानावधि, पक्वापक्व परीक्षा, अम्लता मद्य (आलकोहल) कितना हो और उसे कैसे मापा जाए, इत्यादि आसव के संबन्ध में यावतीय ज्ञातव्य विषयों को सरल और स्पष्ट भाषा में लिखा है। उत्तरार्ध में ज्वरादिक्रम से प्रसिद्ध आसवों के मूल पाठ तथा अपने वक्तव्य के साथ उनकी हिन्दी भाषा देने से आसवारिष्टों को सर्व साधारण के लिये बनाने का सुयोग प्रदान किया है।

सारस्वतारिष्ट प्रकरणमें, "हेमपत्रे क्षयं गते" पर लेखक ने हेम के स्थान में सुवर्ण-लवण देने का पक्ष भी रखा है। परन्तु सारस्वतारिष्ट में डाला सुवर्ण मान में उतना ही रह जाता है या कुछ कम होजाता है, इसका व्यावहारिक अनुभव कर लेना चाहिये और सारस्वतारिष्ट की वैज्ञानिक परीक्षा भी करनी चाहिये। शास्त्रीय दृष्टि से देखें तो—

विघृष्य धौते दृषदि प्राङ्मुखी लघुनाऽम्बुना ।
आमथ्य मधुसर्पिभ्यां लेहयेत् कनकं शिशुम् ॥
सुवर्णप्राशनं ह्येतन्मेधाग्निबलवर्धनम् ।
आयुष्यं मङ्गलं पुण्यं वृष्यं वर्ण्यं ग्रहापहम् ॥

कश्यप संहिता, सूत्रस्थान, अध्याय २०।

भवन्ति चात्र—

सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा—

सुश्रुत, शारीर स्थान, अध्याय १०, श्लोक ६२।

यहां सुश्रुत ने 'भवन्ति चात्र' से प्राचीन वचनों को उद्धृत कर चार प्रयोग पैदा हुए बालक को मधु घृत के साथ सुवर्णचूर्ण चटाने के दिये हैं।

द्वौ यवौ तत्र हेम्नस्तुलितं दद्यात्विषस्य च —

चरक, चि०, अ० १२३।

यहां रसायन के लिये दो यव की मात्रा दी है। यदि सुवर्ण रक्तमें न मिले तो रसायन कैसा ?

मण्डलैर्जातरूपस्य तस्या एव पयः शृतम् ।
अपत्यजननं सिद्धं सघृतक्षौद्रशर्करम् ॥

चरक, चि०, अ०, २, श्लोक ॥

यहां सन्तानोत्पत्ति के लिये सुवर्ण के पत्रों से पके हुए दूध का विधान है। शास्त्रकार "सिद्ध" पद से इस प्रयोग में अधिक बल देता है। इससे विदित होता है कि दुग्ध में भी सुवर्ण का अत्यल्प अंश आजाता है।

विष दूर करने के लिये स्वर्णचूर्ण या स्वर्णपत्रों का विधान है—

शुद्धे हृदि ततः शाणं हेमचूर्णस्य दापयेत्।
हेम सर्वविषाण्याशु गरांश्च विनियच्छति ॥

चरक, चि०, अ० २५, श्लोक २३६।

अपक्व हेम संघृष्टं शिलायां जलयोगतः।
द्रवरूपं तु तत्पेय मधुना गुणदायकम् ॥
यद्वापि तवकारव्यन्तु स्वर्णपत्रं विचूर्णितम्।
मधुना संगृहीतं चेत् सद्यो हन्ति विषादिकम् ॥

आयुर्वेद प्रकाश ३२-३३।

आर्ष ग्रन्थों में सूक्ष्म चूर्ण का ही विधान है; न कि भस्म। पर रसाचार्यों के समय से भस्म रूप में भी प्रयोग होने लगा।

मैंने आसवारिष्टों पर अब तक जो पुस्तकें देखी हैं उन सब से-यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्— इस न्याय से यह पुस्तक उत्तम है। आसव-अरिष्ट बनाने वाले वैद्य तथा विद्यार्थी इसको अवश्य पढें। अध्यापक इस पुस्तक का सार लेकर अपने छात्रों को व्याख्यान दें।

नई देहली
श्रावणी पर्व संवत् २००७

प्राक्कथन

प्राचीन काल में औषधियों का प्रयोग मुख्यतः मुख द्वारा किया जाता था। मलद्वार से वस्ति तथा त्वचा द्वारा अभ्यंग से भी औषधियां शरीर में पहुंचाई जाती थीं। औषधियां कल्क, स्वरस, चूर्ण, वटी, अवलेह और घृत तथा तैल रूप में बनाई जाती थीं। आसव, अरिष्ट की कल्पना अपेक्षया उत्तरकाल की है। इन में कल्क, स्वरस, व विविध क्वाथ सेवन के लिये ताजे बनाये जाते हैं और वे अगले ही दिन विकृत हो जाते हैं। शास्त्रमत से चूर्ण दो मास में 'मासद्वयात् तथा चूर्णं हीन वीर्यत्वमाप्नुयात्' वटी और अवलेह 'हीनत्वं गुटिकालेहौ लभेते वत्सरात्परम्।' एक वर्ष में और सिद्ध घृत तथा तैल 'हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकात् तथा' १६ महीनों में हीन वीर्य हो जाते हैं। यद्यपि विज्ञान की उन्नति के साथ साथ औषधियों को रखने के पात्रों में भी विकास और सुधार हो जाने से हीन वीर्य होने की अवधि में पर्याप्त अन्तर आगया है परन्तु फिर भी इनके गुणों में निरन्तर ह्रास होता जाता है और एक निश्चित अवधि के पश्चात् इनके गुण तथा प्रभाव सर्वथा क्षीण और नष्ट हो जाते हैं। औषधियों के गुणों को अधिकतम समय के लिए सुरक्षित रखने

के लिए उस समय घृत और तैल ही अधिक उपयुक्त थे; परन्तु वे भी सोलह मास में प्रभाव हीन हो जाते थे। इसके विपरीत आसव पुराने होने पर अधिक प्रभाव शाली होते हैं।

"पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ताः आसवा धातवो रसाः ॥"

आसवों के बिगड़ने की, नष्ट वीर्य होने की कोई अवधि नहीं। आसव जितने भी वर्ष पड़ा रहेगा उसमें गुणों की वृद्धि होती जायगी। आचार्यों ने जैसे २ आसव की इस विशेषता का अनुभव किया, चिकित्सा में इनका व्यवहार भी बढ़ता गया और आज सभी रोगों में आसवारिष्ट का सफलता के साथ उपयोग हो रहा है।

आसव में पुराना होकर न बिगड़ने की ही विशेषता नहीं, इसके और भी लाभ हैं। घृत और तैल ओषधियों के गुण और प्रभाव को ग्रहण करने में श्रेष्ठ हैं; परन्तु मुख द्वारा उनका सेवन रुचिकर नहीं। प्राचीन काल में शुद्ध घृत यथेष्ट मात्रा में उपलब्ध होता था, इस लिए उन से बने सिद्ध घृत भी पूर्ण प्रभाव शाली होते थे और खाने में भी अरुचिकर नहीं होते थे। वर्तमान में शुद्ध घृत के न मिलने से औषधसिद्ध घृत चिकित्सा में उपयोगी नहीं रहे; यद्यपि चिकित्सा में उनका विशिष्ट स्थान है और वह सदा बना रहेगा। घृत और तैल की तरह आसव में भी ओषधियों के गुण धर्म को ग्रहण करने की पूर्ण शक्ति है। पीने में ये रुचिकर हैं और मद्यांश के कारण इनमें व्यवायि तथा आशुकारित्व गुण होने से शीघ्र फलप्रद हैं।

व्यय की दृष्टि से आसव सबसे सस्ता बनता है, चिकित्सोपयोगी मात्रा अल्प है, पुराना हो जाने पर फेंकना नहीं पड़ता, क्योंकि बिगड़ने के स्थान पर यह अधिक गुण दायक हो जाता है। इस प्रकार आसव चिकित्सा सस्ती भी है।

इन सब कारणों से चिकित्सक वर्ग और जनता दोनों में आसव के प्रति निष्ठा बढ़ती जाती है। परन्तु आसव पूर्ण गुणकारी हो, इसके लिये आवश्यक है कि उसका निर्माण ठीक हुआ हो, उचित प्रकार से सुरक्षित रखा गया हो और रोगी को देते समय तक किसी भी असावधानी से बिगड़ न गया हो। इस विषय में प्राचीन ग्रन्थों में सूत्ररूप से स्थान २ पर संकेत पाए जाते हैं। आधुनिक विद्वानों ने भी बहुत सी शोध की हैं। लेखक को भी क्रियात्मक में अनेक कठिनाइयों और समस्याओं का समाधान करना पड़ा है। उस सब के आधार पर इस छोटी सी पुस्तिका के पूर्वार्ध में संक्षेप से कुछ विचार वैद्य बन्धुओं की सेवा में रखने का प्रयत्न किया गया है।

उत्तरार्ध में रोगानुसार अकारादिक्रम से निर्माणोपयोगी टिप्पणियों सहित आसवों के योग, और विविध रोगों में उनके उपयोग दिये गये हैं। आशा है वैद्य बन्धु इससे उचित लाभ उठाकर लेखक के परिश्रम को सफल बनायेंगे और त्रुटियों की ओर लेखक का ध्यान दिलाने की कृपा करेंगे जिस से कि आयुर्वेद के ज्ञान में उन्नति हो और अगले संस्करण में उनका सुधार किया जा सके।

वैद्य समाज का तुच्छ सेवक
सत्यदेव

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा
संवत् २००७

आसव अरिष्ट

आसव क्या है !

द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत् संधितं भवेत् ।
आसवारिष्ट, भेदैस्तु प्रोच्यते भेषजोचितम् ॥ शा० सं० ।
पेयं यन्मादकं लोकै स्तन्मद्यमभिधीयते ।
यथारिष्टं सुरा सीधुरासवाद्यमनेकधा ॥ भा० प्र० ।
यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः ॥ शा० सं० ।

द्रवों में चिरकाल तक द्रव्य रख कर संधान क्रिया द्वारा जो औषधोपयोगी पदार्थ बनते हैं वे आसव अरिष्ट आदि भेदों से कहे जाते हैं। जिस पीने के पदार्थ से मादकता (नशा) हो उसको लोक में मद्य कहते हैं; जैसे कि अरिष्ट सुरा, सीधु, और आसव आदि। औषध और जल को बिना पकाए संधानक्रिया से जो मद्य तैयार होता है उसे आसव कहते हैं।

शा० सं० के ऊपर दिये गए प्रथम उद्धरण के अनुसार द्रव पदार्थों में द्रव्यों को चिरकाल तक रखने से संधान क्रिया द्वारा जो भेषजोपयोगी पदार्थ बनते हैं उनके आसव अरिष्ट आदि अनेक भेद हैं। यह आवश्यक नहीं कि सब में मादकता हो। तक्रारिष्ट, जंबीरद्राव, आदि अनेक ऐसे योग शास्त्रों में पाए जाते हैं जिनमें मादकता नहीं होती यद्यपि उनको १५—२० दिन तक तुषपूर्ण गढ़े में रख कर संधान किया जाता है। परन्तु इस प्रकार संधान क्रिया से जब उन भेषजोपयोगी पदार्थों में मादकता आजाती है: वे मद्यरूप में परिणत हो जाते हैं तो उनको आसव, सुरा, अरिष्ट, सीधु आदि नामों से कहते हैं। इस लिए आसव मात्र का प्रधान सामान्य गुण मादकता है। इस सामान्य लक्षण के साथ भिन्न भिन्न द्रव्यों के अनुसार प्रत्येक आसव के विशिष्ट गुण प्रभाव होते। उदाहरणार्थ-अभयारिष्ट में अभया अर्थात् हरीतकी का अनुलोमन तथा रेचन और कुटजारिष्ट में कुटज का ग्राही गुण विशिष्ट है। संधानक्रिया में जो मुख्य औषध होती है उस का नाम आसव या अरिष्ट के साथ जोड़ दिया जाता है। यथा—लोह से लोहासव, चन्दन से चन्दनासव, द्राक्षा से द्राक्षासव इत्यादि।

कुछ विद्वानों का मत है कि इन को आसव संज्ञा 'आसुतत्वादासव संज्ञा' परिस्रुत करने के कारण दी गई है। परिस्रुत करने से आसव का मद्यांश पृथक् हो जाता है। परन्तु आचार्यों ने इस प्रकार प्राप्त शुद्ध मद्यांश का चिकित्सा में प्रयोग करने का कहीं प्रतिपादन नहीं किया। सब ही औष-

धियां मद्य में विलेय हैं; ऐसा भी कोइ सिद्धान्त नहीं। इस लिए परिस्रुत करने पर उसमें सब के गुण आजाना भी संभव नहीं। आसव में मादकता सामान्य और आवश्यक गुण है परन्तु भेषजोपयोगी होना मुख्य है। जो द्रव्य चिकित्सोपयोगी नहीं केवल मादक है उसे मद्य या सुरा आदि नाम दिए जाते हैं और उसे परिस्रुत करने का भी प्रतिपादन किया गया है। यथा—

दिनानि कतिचिद् किण्वं गुडादौ स्थापयेद् भिषक्।
ततो विक्लित्तिमापन्नं यन्त्रैश्च नाडिकादिभिः॥
विधिवत् स्रावयेदस्मादन्यपात्रे स्रुतं रसम्।
गृह्णीयात् स सुरा ख्याता॥

मृत संजीवनी आदि सुराएं परिस्रुत की जाती थीं और मादकता के लिए पी जाती थीं। चरक संहिता में मदात्यय में सुरापान का ही विधिनिषेध है। मद के लिए आसव अरिष्ट का उल्लेख नहीं। श्रम, थकान और शारीरिक तथा मानसिक अवसाद को दूर करने के लिए ही मद्य की आवश्यकता अनुभव होती है। इसके लिए चरक भगवान् ने सब से श्रेष्ठ 'सुरा श्रम हराणाम्' सुरा को बतलाया है; आसव को नहीं। आसवों में मादकता होने पर भी उनका लक्ष्य चिकित्सा है, मादकता नहीं अतः इनको परिस्रुत करना शास्त्र विरुद्ध और अनावश्यक है।

आसव और अरिष्ट में भेद

शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार द्रव और औषध को बिना पकाए संधानक्रिया से जो मद्य बनता है उसे आसव और ओषधियों तथा द्रव को पकाने से संधान क्रिया द्वारा उत्पन्न मद्य को अरिष्ट कहा जाता है। अरिष्ट का अर्थ है न नष्ट होने वाला, न बिगड़ने वाला। अनुमान है कि अरिष्ट की अपेक्षा आसव का निर्माण पहिले हुआ। कच्चे पानी में कच्ची ओषधियों के डालने से बने आसव को जल्दी बिगड़ता देख कर ओषधियों का द्रव में पका कर उनका क्वाथ करके आसव बनाने का विचार हुआ और अनुभव से जब यह सिद्ध हो गया कि इस प्रकार बना आसव देर तक नहीं बिगड़ता तो उसको अरिष्ट संज्ञा दी गई।

वस्तुतः आसव और अरिष्ट में भेद कल्पित है। अनेक स्थानों पर इनमें कोई भेद नहीं किया गया। यथा—

आसवारिष्टयोर्यत्र न गुणो लभ्यते यदा।
एकद्वित्रिश्रृतं कृत्वा दापयेत् गुणवृद्धये॥
अष्टावशेषितं कृत्वा गुडक्वाथसमं क्षिपेत्।
गुडं क्वाथ्यौषधसमं जलं चापि चतुर्गुणम्॥
आसवारिष्ट मद्येषु…………………… ।

यहां आसवारिष्ट में कोई भेद नहीं किया गया।

इसी प्रकार कई स्थलों पर क्वाथ करके भी आसव बनाने का विधान है। उदाहरणार्थ—

काथ्यद्रव्यं घटसमं जलं दशघटं क्षिपेत्।
निः काथ्य पादशेषं तु गुडं साधघटंन्यसेत्॥
विमर्द्य सन्धितं यच्च तच्चैवासवमीरितम्॥

योगरत्नाकर में अर्शरोग की चिकित्सा में शर्करासव और द्राक्षासव का पाठ है; परन्तु दोनों ही चतुर्थांश काथ करके सिद्ध किये गए हैं। इसी प्रकार कुष्ठ चिकित्सा में काथसिद्ध खदिरासव का उल्लेख है। चरक ने पाण्डुरोग की चिकित्सा में आमलों के स्वरस से ही धात्र्यरिष्ट बनाने का विधान किया है। इसी प्रकार एक ही योग को गद निग्रह में और योग-रत्नाकर में खदिरासव और भैषज्य रत्नावली तथा शाङ्गधर संहिता में खदिरारिष्ट नाम दिया है। ऐसे और भी बहुत उद्धारण दिए जा सकते हैं। परन्तु अभिप्राय स्पष्ट करने के लिए ये पर्याप्त हैं। वास्तव में किसी २ आचार्य के अतिरिक्त आसव अरिष्ट के भेद पर किसी ने विशेष आग्रह नहीं किया।

भावप्रकाशके उ द्धारण से हमने पीछे बतलाया था कि संधान क्रिया द्वाराआसवारिष्ट भेद से अनेक पदार्थ बनते हैं। इनमें मीठा डालने से आसव, अरिष्ट, सीधु, सुरा, वारुणी और मैरेय मादक पदाथ बनते हैं और बिना मीठे के शुक्त, तुषाम्बु, सौवीर और कांजिक तथा इनकी श्रेणी के तक्रारिष्ट, आयाम-कांजिक एवं जंबीरद्राव आदि योग सिद्ध होते हैं। आसवारिष्ट का वर्णन संक्षेप में किया भी जा चुका है और आगे भी सम्पूर्ण पुस्तक में इन्हीं का विस्तार है। शेष पदार्थों के लक्षण यहां

संक्षेप से दिये जाते हैं।

सीधु— ज्ञेयः शीतरसः सीधुरपक्क मधुरद्रवैः।
सिद्धः पक्वरसः सीधुः संपक्वमधुरद्रवैः॥

गन्ने या ईख के रस को बिना पकाए संधानक्रिया से जो मद्य तैयार होता है, उसे शीतरस सीधु और जो पकाए हुए रस से तैयार हो उसे पक्वरस सीधु कहते हैं। इसमें और कोई औषध नहीं डाली जाती।

सुरा— परिपक्वान्न संधान समुत्पन्नां सुरां जगुः।
सुरा मण्डः प्रसन्ना स्यात्ततः कादम्बरी घना॥
तदधो जगलो ज्ञेयो मेदको जगलाद्घनः।

जौ, चावल आदि अन्न पदार्थों को पका कर मीठा मिला कर संधान क्रिया से जो मद्य तयार होता है उसे सुरा कहते हैं। इसके ऊपर के स्वच्छ भाग को प्रसन्ना कुछ घने भाग को कादम्बरी, उससे नीचे के भाग को जगल और सबसे नीचे के घन भाग को मेदक कहते हैं। जगल को सुखा कर संधान के लिए बीज के रूप में प्रयोग करते हैं, इसे सुराबीज या किण्व भी कहते हैं।

सुरा के चार भेद हैं। यथा—

गौड़ी माध्वी तथा पैष्टी निर्यासा कथिता परा।
इति चतुर्विधाज्ञेया सुरास्तासां प्रभेदकाः॥

गौड़ी—गुड़ डाल कर संधान की हुई सुरा का नाम गौड़ी है।

माध्वी—महुए के फूलों को पानी में डाल कर संधान की हुई सुरा का नाम माध्वी है।

पैष्टी—जौ, चावल आदि को भिगो कर पानी में पीस कर पानी में घोल कर संधान की हुई सुरा का नाम पैष्टी है।

निर्यासा—ईख और फलों के रस को मिला कर तैयार की गई सुरा का नाम निर्यासा है।

मैरेय— आसवस्य सुरायाश्च द्वयोरेकत्र भाजने
संधानं तद् विजानीयात् मैरेयमुभयात्मकम् ॥
मालूरमूलं बदरी शर्करा च तथैव च
एषामकत्र संधानात् मैरेयी मदिरा मता ॥

आसव और सुरा दोनों के कुछ कुछ पदार्थ मिला कर संधान करने से उत्पन्न मद्य का नाम मैरेयी है। बबूल और बेरी की जड़ या छाल तथा चीनी के योग से बनी सुरा भी मैरेयी कहलाती है।

वारुणी— यत्तालखर्जूररसैः संधितं सा हि वारुणी ॥

ताड़ या खजूर वृक्ष के रस से संधान होने पर उत्पन्न मद्य को वारुणी कहते हैं।

शुक्त— कन्द मूल फलादीनि सस्नेहलवणानि च
यत्रद्रवेऽभिषूयन्ते तच्छुक्तमभिधीयते ॥
विनष्टमम्लतां याति मधु वा मधुरद्रवः।
विनष्टः सन्धितो यस्तु तच्छुक्तमभिधीयते ॥

कन्द, मूल, फल आदि और स्नेह तथा लवण द्रव में डालने से संधान द्वारा जो पदार्थ बनता है उसे शुक्त या सिरका

कहते हैं। इसी प्रकार शहद या मधुर द्रव के बिगड़ कर खट्टा हो जाने पर शुक्त बन जाता है।

तुषाम्बु— तुषाम्बु संधितंज्ञेयमामैर्विदलितैर्यवैः।

कच्चे दले हुए जौ को जल में डाल कर सन्धान करने से तुषाम्बु सिद्ध होता है।

सौवीर — यवैः सुनिस्तुषैः पक्वैः सौवीरं संधितं भवेत्।

निस्तुष पके जौ के सन्धान से उत्पन्न पदार्थ को सौवीर कहते हैं।

काञ्जिक— कुल्माष धान्य मण्डादि संधितं कांजिकं विदुः।

कुल्माष अर्थात् सीजे हुए गेहूं, धान्य और मांड आदि से संधान करके जो बनती है उसे कांजिक कहते हैं।

सण्डाकी— सण्डाकी संधिता ज्ञेया मूलकैः सषपादिभिः।

मूली और सरसों आदि मिला कर जो संधान से काञ्जी बनती है उसे सण्डाकी कहते हैं।

आसव निर्माण

आसव का बनना प्रकृति में होने वाली एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। बाह्य उत्ताप, सर्दी, गरमी, वर्षा वायु मण्डल और उसमें रहने वाले हजारों प्रकार के सूक्ष्म जीवाणुओं का प्रभाव समस्त पदार्थों पर पड़ता रहता है और उनमें भौतिक या रासायनिक परिवर्तन प्रतिक्षण होते रहते हैं। भौतिक परिवर्तन में ताप उत्पन्न नहीं होता और वस्तु का रूपान्तर नहीं होता। रासायनिक परिवर्तन में ताप उत्पन्न होता है और वस्तु का

रूपान्तर हो जाता है। यदि हम दूध को बिना कुछ किये ऐसे ही एक दिन या रात पड़ा रहने दें तो इस का रूप बदल जाता है। द्रव दूध अब ठोस दही के रूप में आ जाता है; दूध की मिठास का स्थान अम्लता ले लेती है। यह दूध में रासायनिक परिवर्तन हुआ। इसी प्रकार पानी में कुछ मीठा घोल कर या मीठे फलों का रस निकाल कर यदि किसी पात्र में दो एक दिन पड़ा रहने दिया जाय तो इसके भी गंध, रस और रूप बदल जायेंगे। यह आसव जातीय एक रासायनिक परिवर्तन हुआ, जिससे कि मीठे के अणुओं से मद्य और कार्बनद्विओषजिद् की उत्पत्ति हुई। परन्तु प्रतिदिन देखते हैं कि दूध से दही सदा एक सा नहीं जमता। इसी प्रकार मीठे द्रव का रूपान्तर भी एक समान नहीं होता। दही कभी खट्टा होता है, कभी पतला जमता है तो कभी ठोस रूप में। इस विभिन्नता पर विचार किया गया और कारणों का अनुसंधान हुआ। ज्ञात हुआ कि गाय के दूध का दही दूध की विशिष्ट रचना के कारण पतला जमता है जब कि भैंस के दूध का ठास चकत्ते के रूप में। सर्दी में दूध जमाना हो तो गरम जमाना पड़ता है और उसे गरम कपड़ों से ढकना होता है या गरम अंगीठी पर रखना होता है। ग्रीष्म ऋतु में यदि ऐसा किया जाय तो कभी इच्छानुरूप स्वादिष्ट दही नहीं मिलेगा। यह भी देखा गया कि जब दही में अप्रिय गन्ध आजाय तो बरतन को साफ किया जाता है और दूध में अच्छे दही का जाग (बीज) दिया जाता है; उस विकृत दही का जाग नहीं दिया जाता। इस प्रकार अनुभवों और परीक्षणों से

हमने उत्तम दही जमाने के कारणों का पता लगा लिया और अब सदा एक सा स्वादिष्ट दही यथेष्ट प्राप्त होने लगा।

आसव भी प्रकृति में स्वतः बनता है; परन्तु वह सदा एक सा नहीं होता। कभी गाढा होता है तो कभी पतला; कभी स्वादिष्ट सुमधुर बनता है तो कभी वह सिरके के समान खट्टा होता है; कभी वह १२% मद्यांशयुक्त तीक्ष्ण होता है तो कभी उसमें २ या ३% ही मद्यांश होने से तीक्ष्णता नहीं होती। आसव का मुख्य प्रयोजन औषध है। उसमें इतनी भिन्नताएं हों तो निश्चय और विश्वास पूर्वक चिकित्सा में व्यवहार नहीं किया जा सकता। इसे भी सदा एक सा रूप, रस गंधयुक्त गुणदायक बनाने के लिए विद्वानों ने अनुसन्धान किए और उन अवस्थाओं का पता लगाया जिन का कि आसव के बनने और बिगड़ने पर प्रभाव पड़ता है।

इन अवस्थाओं और कारणों का सम्यग् ज्ञान होजाने पर आसव भी सदा इच्छित रूप रस, गन्धयुक्त और उपयोगी बनेगा। अन्यथा प्रकृति पर छोड़ देने से एक ही आसव के रूप, रस व गन्ध प्रत्येक बार भिन्न २ हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

आसव का ठीक बनना पात्र की शुद्धता, मीठे और जल के उचित परिमाण, किण्व, ऋतु, स्थान तथा तापमान आदि पर आश्रित है। इन पर अब यथाक्रम उचित प्रकाश डालने का यत्न करेंगे।

आसव के पात्र

आसव बनाने के लिए प्राचीन शास्त्रों में 'मृद्भाण्ड' 'आज्यभाण्ड' मट्टी बने हुए घी रखने के बर्तनों का उल्लेख प्रायः

सभी आसव अरिष्टों में मिलता है। स्वर्ण और लौहपात्रों का भी दो एक आसवों में वर्णन है; परन्तु इनका उपयोग सर्वसाधारण की सामर्थ्य से बाहिर है। दूसरे चीनी, कांच या लकड़ी के पात्र उस समय अप्राप्य थे; अतः उस समय दूसरा कोई विकल्प न होने के कारण पात्र के गुण दोष या प्रकार के संबन्ध में विचार करने की कोई आवश्यकता न थी। मट्टी के बरतनों को ही उचित संस्कार द्वारा आसव के योग्य बनाया जाता था।

मट्टी के बरतनों में दो मुख्य दोष हैं। प्रथम ये सच्छिद्र होते हैं; इनमें डाला द्रव बरतन के पोरस होने के कारण बाहिर रिसता रहता है जिससे कि द्रव की मात्रा कम हो जाती है। इन में दूसरा दोष तापवाहक होने का है। आसव के बनते समय मीठा रासायनिक क्रिया द्वारा मद्य में परिणत होता है और ऐसा होने में ताप उत्पन्न होता है। आसवीय संधान के लिए इस ताप के स्थिर रहने की नितान्त आवश्यकता होती है; परन्तु मट्टी का पात्र तापवाहक होने से भीतर की गर्मी को बाहिर फेंकता रहता है। इसी प्रकार शीत ऋतु में बाहिर की ठण्डी वायु का संबन्ध होने से भीतर की उष्णता कम हो जाती है जिस से कि संधान व्यापार बन्द हो जाता है।

इन दो दोषों का परिहार करने के लिए शास्त्र ने 'आज्य भाण्ड' का आदेश दिया। आज्यभाण्ड से घी से परिप्लुत, घी से रमे हुए पात्र का बोध होता है जिसमें कि सर्वदा घी रखा रहता हो। घृत का केवल लेप मात्र करने से आज्य भाण्ड नहीं बनता और उसके पोरस-सच्छिद्र होने का

दोष यथापूर्व बना रहता है। आज्यभाण्ड को लेते हुए भी आसवीय घोल डालने से पूर्व उसे तेज धूप में रख कर या गरम पानी से धोकर कपड़े से पोंछ लेने का ध्यान रखना चाहिए; अन्यथा घोल पर घृत की स्तर आजाने से संधान क्रिया में बाधा पड़ेगी।

ताप वाहकता के दोष को दूर करने के लिए आचार्यों ने 'तद्भाण्डं धान्यराशिगम्' 'भूम्यां वा धान्यराशौ वा स्थापयेद्दिन विंशतिः' धान्यराशि या भूमि में दबाने का विधान किया।

इन उपायों के अतिरिक्त राल मिश्रण का पात्र में लेप करने से अभीष्ट सफलता होती है। १० तोले राल को २४ औंस मेथीलेटेड स्पिरिट (जलाने की शराब) में मिलाएं और लेप करें। एक लेप सूखने पर दूसरा करें। इस प्रकार सात बार लेप करने से सच्छिद्रता का दोष नहीं रहता।

धातकीपुष्प और लोध्र दोनों का समान भाग लेकर शिला पर पानी के साथ पीस कर सूक्ष्म पंक बना कर लेप करें। एक लेप के सूखने पर दूसरा और फिर तीसरा कुल तीन लेप करें। इससे छिद्र बन्द हो जाएंगे और पात्र आसव के लिए तयार हो जायगा। धातकीपुष्प और लोध्र इनमें आसव जातीय जीवाणु प्रचुर मात्रा में रहते हैं जिससे कि मद्योद्गम में भी सहायता मिलती है।

अल्पमात्रा में बनाने वाले तथा सीमित साधन वाले वैद्यों के लिए ये पात्र इस प्रकार पूर्ण उपयुक्त हो सकते हैं।

प्राचीन काल में जब मट्टी के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार के पात्र प्राप्य नहीं थे उस समय तो घड़े या मटके में ही आसव बनाने के सिवाय कोई दूसरा उपाय न था। परन्तु आज

कल चीनी और कांच के पात्र भी अभीष्ट परिमाण में उपलब्ध होते हैं। कांच के बरतन सच्छिद्र तो नहीं होते परन्तु पूर्णतया ताप निरोधक नहीं होते। चीनी के पात्र दोनों दोषों से रहित हैं—ये सच्छिद्र भी नहीं होते कि उन में डाला द्रव रिस कर कम होजाए और ताप वाहक भी नहीं कि पात्र का तापमान घटता बढ़ता रहे।

बीस २ या तीस २ सेर आसव बनाने के लिए ये चीनी के पात्र भी सर्वथा उपयुक्त हैं।

इससे अधिक परिमाण में, मनों में यदि आसव बनाने हों तो सीमेंट के हौज़ या लकड़ी के बड़े ढोल काम में आते हैं। हमने आसव बनाने के लिए सीमेंट के हौज़ों का और उनको सुरक्षित रखने व स्टाक करने के लिए लकड़ी के ढोलों का प्रबन्ध किया हुवा है। हौज़ २ फीट लंबे २ फीट चौड़े तथा २ फीट ६ इंच गहरे बने हैं। इनमें पांच या छः मन आसव तयार हो जाता है। आवश्यकतानुसार इनकी लंबाई बढाई जा सकती है। हमने द्राक्षासव के लिए एक हौज़ ६ फ़ीट लंबा ३ फीट चौड़ा तथा ३ फीट गहरा बनवाया है जिसमें कि २२ मन द्राक्षासव एक साथ तयार होता है। इन हौज़ों को बनवाने के लिए आध सूत मोटी और आध इंच चौड़ी लोहे की जाली का अभीष्ट परिमाण का फ्रेम लुहार से बनवा लिया जाता है और उसे सीमेंट तथा बजरी से भरवा कर सीमेंट का प्लास्टर करवा दिया जाता है। दोनों ओर पकड़ कर उठाने के लिए लोहे के दस्ते भी लगा दिये जाते हैं। ऊपर लोहे के सींखचों और सीमेंट का ढकना रहता है। इस ढकन के बीच में तीन इंच लंबा चौड़ा मुख छोड़ दिया गया

है और इस को ढकने के लिए एक छोटा सीमेंट का ढक्कन है। हौज़ अधिक लंबा हो तो छोटे छोटे कई ढक्कन बनवाने चाहिएं, जो सुगमता से उठाए जा सकें। ये हौज़ अब एक प्रकार से बड़े माट का काम देते हैं। सीमेंट के ये हौज़ भी तापवाहक होते हैं और कुछ पोरस भी। पोरस होने के कारण छः सात वर्ष में ये हौज़ निरुपयोगी हो जाते हैं; इसके लिए इनमें हार्ड पेराफीन (Hard Paraffin) का लेप करना चाहिए। क्योंकि ये ताप-वाहक भी हैं अतः इनको एक और बड़े सीमेंट के गढ़े में रखना चाहिए और इनके चारों ओर ताप को स्थिर रखने के लिए अन्नतुष आदि प्राचीन मर्यादा के अनुसार रखने चाहिएं।

छोटे मुख के पात्रों की अपेक्षा इन हौज़ों का ढक्कन हटा कर संधानक्रिया का प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है। संधान के होने न होने या पूर्ण हो जाने का ठीक ठीक पता चल जाता है। ढक्कन में रखे छोटे मुख से दियासलाई आदि द्वारा आसव की परीक्षा की जा सकती है और कार्बन द्विओषजिद को इस मार्ग से निकाला जा सकता है। ये हौज़ प्रत्येक नगर और गांव में बनवाए जा सकते हैं; कहीं से मंगवाने की भी अपेक्षा नहीं।

आजकल बड़ी फार्मेसियों में लकड़ी के ढोलों में ही आसव बनाए व रखे जाते हैं। सुराशालाओं में भी लकड़ी के ढोल व्यवहार में आते हैं। ये ढोल सागवान शीशम तथा अर्जुन आदि दृढ़ काष्ठ वाले वृक्षों की लकड़ी से बने हुए लेने चाहिएं। इनमें भी सागवान सब से श्रेष्ठ है। इस के बने ढोल बंबई आदि बड़े व्यापारिक नगरों से मिल सकते हैं।

जल या आसव के प्रभाव से यह लकड़ी सड़ती गलती नहीं आम की लकड़ी के भी ढोल कहीं कहीं बनते हैं, परन्तु वे आसव के प्रयोजन के नहीं होते।

ये लकड़ी के ढोल उत्तम तापनिरोधक होते हैं। इनमें से द्रव भी नहीं रिसता। इन दो कारणों से आसवों के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। इनके ऊपर के भाग में इच्छानुसार छोटा या बड़ा मुख रखा जाता है जिस से उसमें आसव डाला जाता है। मुख को ढकने के लिए लकड़ी का ही ढक्कन बनाया जाता है और उसमें दस्ता लगा देते हैं। पैंदे से ऊपर लगभग आठ या नौ इंच पर टूटी लगा दी जाती है। आसव की गाद नीचे बैठ जाता है और आसव आवश्यकतानुसार टूटी में से ले लिया जाता है। यदि यह टूटी न लगानी हो तो वक्रा नली (साइफन) द्वारा ऊपर के मुख में से ही आसव खींच कर नीचे के पात्र में भर लिया जाता है।

आसव पात्र की शुद्धि

एक बार जिस पात्र में आसव बनाया गया हो उसमें दुबारा डालने से पूर्व उसकी शुद्धि कर लेनी चाहिये। त्रिविध वैद्यों व फार्मेसियों के बने आसवों की परीक्षा करने से उनमें अव्यक्त रूप में स्वल्पमात्रा में सूक्ताम्ल (सिरका) की विद्यमानता अवश्य पाई गई है। पात्र की शुद्धि न करने से यह अम्लता बढती जायगी जिसके परिणामस्वरूप आसव भी अधिक अम्ल या सिरका हो जायगा। शुद्ध करने के लिए एक सेर अनबुझा चूना और पन्द्रह सेर जल घड़े में डालकर चार घण्टे गरम करें।

फिर इस पानी को फैंक कर पांच–सात बार शुद्ध जल से धोवें। सोड़ा कास्टिक का जल में चार प्रतिशतक घोल बना कर पात्र में तीन चार दिन रखने से भी अम्लता नष्ट हो जाती है।

आसव पात्र का मुख बन्द करना

आसव पात्र में औषधियां डालने के बाद उसके मुख को बन्द करने या न करने के संबन्ध में कोई स्पष्ट सिद्धन्त शास्त्रों में नहीं बतलाया गया। किसी किसी आसव के सम्बन्ध में मट्टी से मुख बन्द करने का आदेश है विचार करने से ऐसे आसवों में अन्य आसवों से कोई ऐसी विशेषता प्रतीत नहीं होती कि इनके संबन्ध में पात्र का मुख बन्द करने का आदेश देना आवश्यक समझा जाए। प्रतीत होता है कि उस समय पात्र का मुख बन्द करने की ही प्रथा थी और सुविधानुसार कहीं २ उसका उल्लेख कर दिया गया; सर्वत्र इसको लिखने की आवश्यकता नहीं समझी गई। जो कुछ भी हो वैद्य समाज में गुरु परम्परा से आसव के पात्र के मुख को बन्द करने का ही साधारण नियम है।

परन्तु सुराशालाओं में तो प्रतिदिन मद्य और सुरा का निर्माण खुले पात्रों में हो रहा है; तो आसव के पात्र का मुख क्यों बन्द किया जाए! जिस प्रकार मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्राणधारियों के लिए शुद्ध वायु की आवश्यकता है' क्या उसी प्रकार आसव बनाने वाले जीवाणुओं के लिए शुद्ध वायु आवश्यक नहीं है! प्राणवायु के अभाव में उन जीवाणुओं के मर जाने से क्या संधान क्रिया बन्द न हो जाएगी!

अनुभव से देखा गया है कि पात्र में आसव डालकर मुख बन्द कर देने के ५–७ दिन पश्चात्, मुखमुद्रा को खोल कर यदि एक जलती दियासलाई या मोमबत्ती पात्र में ले जाएं तो वह बुझ जाती है। प्राणवायु या ओषजन की उपस्थिति में अग्नि जलती है और उसके अभाव तथा कार्बन द्विओषजिद् (CO2) की उपस्थिति में अग्नि बुझ जाती है। आसव पात्र में भी मोमबत्ती या दियासलाई बुझने का यही कारण है। परन्तु आसव की सन्धानावधि पूर्ण हो जाने पर जब पुनः मुखमुद्रा खोल कर जलती मोमबत्ती या दियासलाई से परीक्षा की जाती है तो आसव यदि पक्व होगा तो वह बुझेगी नहीं जलती रहेगी। अब इसमें कार्बन द्विओषजिद् वायु नहीं रहती। उसको निकलने के लिए भी कोई अवकाश नहीं था; वह कहां गई! सन्धानक्रिया के होने के साथ-साथ आसव के पक्व हो जाने पर इस वायु में विघटन होता है—कार्बन तथा ओषजन-पृथक् २ हो जाते हैं। इस प्रकार कार्बन द्विओषजिद् के अभाव में जीवाणुओं के आसव निर्माण व्यापार में कोई बाधा नहीं पहुंचती।

आसव के पात्र को मुख तक पूरा नहीं भरा जाता। आधा या एक चौथाई भाग खाली रहने दिया जाता है। इस रिक्त भाग में जीवाणुओं की वृद्धि के लिए पर्याप्त वायु रहती है।

पांच सात दिन के पश्चात् दियासलाई या मोमबत्ती से परीक्षा करते समय कार्बन द्विओषजिद् बाहिर निकाली जा सकती है और प्राणवायु अर्थात् ओषजन का प्रवेश हो सकता है।

इस प्रकार पात्र के मुख को बन्द रखने से भी आसव निर्माण प्रक्रिया में कोई बाधा नहीं आती।

किन्तु यदि मुख बन्द न किया जाय तो ? हम प्रतिदिन देखते हैं कि साधारण ताप माप पर भी द्रव पदार्थों का बाष्पीभवन होता रहता है। द्रव पदार्थों की भाफ बनती रहती है और धीरे धीरे द्रव पदाथ सूख जाते हैं। पात्र का मुख खुला रहने पर बाष्पीभवन से आसव का जल सूखेगा और उसका परिमाण पर्याप्त कम हो जाएगा जल की अपेक्षा मद्यांश और भी थोड़े ताप मान पर उड़ने लगता है। मद्यांश के उड़ जाने से केवल ओषधियों का काथ मात्र पात्र में रह जाएगा। सुराशालाओं में तो चौबीस-छत्तीस घण्टों में ही तीव्र मद्य तैयार हो जाती है; उसे भी फिर खुला नहीं रखा जाता। बन्द बोतलों या ढोलों में रखा जाता है। खुला रहने से वह भी उड़ने लगती है। परन्तु आसव निर्माण में एक मास में अधिक से अधिक दस पन्द्रह प्रतिशतक मद्यांश बनना है। वह यदि साथ ही साथ उड़ता भी जाए तो वह आसव न रहकर सिरका हो जाएगा। इसी लिए आसव बन जाने पर उसे यथासंभव वायु के स्पर्श से बचा कर बन्द पात्रों में ही छाना जाता है और बोतलों में बन्द करके सुरक्षित रखा जाता है।

पात्र को मट्टी की मुद्रा से बिल्कुल बन्द कर दिया जाए, ऐसा भी आवश्यक नहीं। हम चौड़े मुख के पात्र के मुख को सीमेंट या लकड़ी के ढक्कन से ढक देते हैं और उसमें भी एक छोटा सा मुख रख देते हैं जो कि एक छोटे ढक्कन द्वारा

आवश्यकतानुसार खोला या बन्द किया जा सकता है। इस आयोजन में कार्बन द्विओषजिद् को निकलने का अवकाश रहता है और मद्यांश सुरक्षित रहता है।

आसव का पात्र कहां रखा जाए

जिस समय केवल मट्टी के पात्र उपलब्ध होते थे उस समय आसव बनाने के लिए भी उन ही का प्रयोग हो सकता था। उनके तापवाहक होने के कारण यह विचारणीय था कि उनको कहां और किस प्रकार रखा जाए जिससे संधान क्रिया में उत्पन्न तापमान स्थिर रह सके। स्थान का महत्व तापमान को स्थिर रखने के उद्देश्य से है। इस लिए इस सम्बन्ध में विविध आदेश देखने में आते हैं। कहीं केवल-'घृत भाण्डे विनिक्षिपेद्'-आज्य भाण्ड में डालने का उल्लेख है तो कहीं—'मासं निधेयो यवमध्यतः' 'तद् भाण्डं धान्यराशिगम्'—जौ या अनाज के ढेर में रखने का विधान है और कहीं—'मासार्धं च तथा भूमौ निक्षिपेदतियत्नतः'—भूमि में गाड़ने की आज्ञा है। इतना ही नहीं कहीं २ तो 'आतपे तं विनिक्षिप्य धारयेत् त्रिदिनं ततः। प्रक्षिप्य भाण्डे शशियुग्म घस्रान् सूर्यातपे स्थाप्य ततस्तु योज्यः॥ सूर्य की धूप में भी रखने का वर्णन है।

वस्तुतः इस सम्बन्ध में एक नियम हो भी कैसे सकता है? कभी केवल घृत भाण्ड को साधारण कमरे में रख देने से ही काम चल जाता है; कभी शीत ऋतु में जौ के ढेर में रखना आवश्यक हो सकता है; कदाचित् तुष आदि

के ढेर में रख कर भूमि में गाड़ना भी आवश्यक हो सकता है। अतिशीत ऋतु में दिन के समय धूप में रखना होगा और रात को कोयलों की अंगीठी का प्रबन्ध करना होगा। इन सब का उद्देश्य आसव को उचित और स्थिर ताप देना मात्र है। यदि गर्मियों में आसव पात्र को गरम लू या धूप लगती रहे और सर्दियों में ठण्डी हवा तो आसव महीनों घड़े में पड़ा रहने पर भी नहीं बन सकेगा। वैद्य समाज में ये दोनों तीनों प्रथाएं आजकल भी प्रचलित हैं। इनका प्रयोग देश काल तथा ऋतु के अनुसार तापमान की दृष्टि से करना चाहिये।

आसव पात्र को यदि भूमि में गाड़ना हो तो आर्द्रता तथा शीत से रहित स्थान पर चार हाथ गहरा तथा अढ़ाई हाथ चौड़ा गढा खोद कर दो चार दिन उसे खुला रहने दें, फिर आधा गढ़ा भूसे से भर दें; और उस पर पात्र रख कर, औषध डालकर, मुख बन्द कर दें। शेष गढ़े में ऊपर तक भूसा भर कर उसे बन्द कर दें।

कच्चा गढा खोदने की अपेक्षा ईंटों का पक्का गढ़ा बनवाना अधिक उत्तम है।

यह सब व्यवस्था मट्टी के घड़े अथवा कांच या चीनी के पात्रों में आसव बनाने की दशा में आवश्यक है। परन्तु जब प्रचुर परिमाण में आसव बनाने के लिए सीमेंट के हौजों या लकड़ी के ढोलों का उपयोग करना हो तो उन्हें बाह्य शीत से बचाने के लिए भूमि में गाड़ना या धान्यराशि में रखना संभव नहीं। इस अवस्था में शीतऋतु

में पानी की भाफ या बिजली के हीटरों से कमरों को गरम तथा ग्रीष्मऋतु में बरफ से ठण्डा रखने का प्रबन्ध करना आवश्यक होगा।

आसव का घोल

आसव के पात्र और उसको रखने के स्थान का उचित प्रबन्ध हो जाने पर उस पात्र में डालने के लिए आसव का घोल बनाना चाहिये। औषधियों के क्वाथ या केवल जल में गुड़ आदि मधुर पदार्थ मिलाने से घोल तैयार होता है। शास्त्रों में आसवों के योगों में औषधियों और क्वाथ्य जल तथा मधु, गुड़ आदि मधुर पदार्थों का मान प्रायः दे दिया गया है, परन्तु कहीं नहीं भी दिया गया। उसके लिये पृथक् परिभाषा है जिसकी व्याख्या आगे की जायगी। योगों में निर्दिष्ट मान के अनुसार नवीन औषधियां लेकर उनका जौकुट चूर्ण करना चाहिये। क्वाथ करने से पूर्व उस चूर्ण को थोड़े जल में भिगो कर एक रात रखना चाहिये। ऐसा करने से औषधियों का सारभाग अधिक से अधिक मात्रा में क्वाथ में आ सकेगा। औषधियों के मोटा रहने या उनको पहिले जल में भिगो कर रखे बिना क्वाथ बनाने से आसव में पूर्ण गुण नहीं आ सकते। तदनन्तर अगले दिन निर्दिष्ट मात्रा में स्वच्छ जल डाल कर क्वाथ करना चाहिये और यथा विधान चतुर्थांश या अष्टमांश जल रहने पर छान लेना चाहिये। शास्त्र में औषधियों के कठोर और मृदु होने के भेद के

अनुसार क्वाथ्य द्रव्यों से चार गुना, आठ गुना या सोलह गुना जल लेकर क्वाथ करने का विधान किया गया है। क्वाथ कर लेने पर यदि ऐसा अनुभव हो कि औषधियां अभी कठोर हैं और उनका सार क्वाथ में नहीं आया तो और जल मिला कर पुनः क्वाथ करना उचित होगा।

कुछ आसवों और अरिष्टों में क्वाथ करने का विधान नहीं है। क्योंकि अनेक सुगन्धित पदार्थ ऐसे हैं जिनका क्वाथ करने पर उनकी गंध तथा उड़नशील तैल उड़ जाते हैं। इसलिए ऐसे पदार्थों का क्वाथ करना उचित नहीं होगा। परन्तु केवल जल को ९०° शतांश तक उबाल लें और मधुर पदार्थ मिला कर ३२°।३६° शतांश तक ठण्डा होने दें; तदनन्तर उसमें औषधियां मिलाएं। आसवीय संधान ३२°।३६° शतांश पर सब से प्रबल होता है। अतः अरिष्ट और आसव दोनों के घोल का ताप परिमाण ३२°।३६° शतांश रखना चाहिये। इस तापमान पर सुगन्धित द्रव्यों के आवश्यक उड़नशील तैल भी नहीं उड़ते।

जल में भी अनेक अशुद्धियां होती हैं जो कि उबालने से नष्ट हो जाती हैं।

इस प्रकार क्वाथ या जल तैयार हो जाने पर गुड़ आदि मधुर पदार्थ मिलाने चाहियें। योगों को देखने से ज्ञात होता है कि सामान्यतः क्वाथ या जल से लगभग आधे परिमाण तक में भी मधुर द्रव्य लिए गए हैं। कहीं कहीं तो बारह तेरह सेर क्वाथ में दस सेर गुड़ का भी विधान है। ऐसे स्थलों पर निम्न परिभाषा के अनुसार द्रव द्विगुण करलें या मधुर द्रव्य आधा लें।

"गुञ्जादिमानमारभ्य यावत् स्यात् कुडवस्थितिः ।
द्रवार्द्र शुष्कद्रव्यानां तावन्मानं समं मतम् ॥
प्रस्थादिमान मारभ्यद्विगुणं तद् द्रवार्द्र योः ॥"

अर्थात् कुडव (सोलह तोले) परिमाण तक शुष्क, आर्द्र तथा द्रव ओषधियां योगों में लिखित मात्रा के अनुसार लेनी चाहियें। किंतु प्रस्थ से प्रारंभ करके ऊपर के मानों में आर्द्र तथा द्रव पदार्थ योगों में लिखित मात्रा से दुगुने लेने चाहियें। इसी परिभाषा का आश्रय लेकर हमने उत्तरार्ध में आसवों के योग लिखते हुए विशेष द्रष्टव्य में जल को दुगुने परिमाण में लेने का यथास्थल विधान किया है।

परन्तु ऐसा क्यों किया जाए ? मीठे में दो परस्पर विरोधी गुण हैं। वह स्वयं तो सड़ता है; परन्तु वस्तुओं को सड़ने से बचाता है। उदाहरणार्थ मीठे फलों के रस या गुड़ चीनी के पतले घोल को दो तीन दिन पड़ा रहने दीजिए, वह सड़ने लगेगा। इसके विपरीत यदि किसी औषध के क्वाथ या फल के रस में ६६ प्रतिशतक चीनी मिला कर गाढ़ा शरबत बनाया जाए तो यह गाढ़े शरबत की चीनी फल या औषध के रस तथा क्वाथ को सड़ने से बचाएगी। अभिप्राय यह हुआ कि गुड़ या चीनी का तरल घोल सड़ता है और इसके विपरीत सान्द्र घोल औरों को सड़ने से बचाता है। क्योंकि आसव में प्रारंभ में सड़ने की प्रक्रिया का होना अभीष्ट है, अतः इसका घोल भी तरल होना चाहिये; सान्द्र नहीं। बारह तेरह सेर जल में दस या छः-सात सेर गुड़ डालने से आसव कभी नहीं उठेगा। इसके लिए १०५० आपेक्षिक गुरुत्व का घोल होना चाहिये।

आपेक्षिक गुरुत्व को गुरुता मापक (हाइड्रोमीटर) से माप लेना चाहिये। यह आपेक्षिक गुरुता एक सेर जल में लगभग तीन छटांक गुड़ घोलने से होती है। ३२° शतांश ताप परिमाण पर १०५० आपेक्षिक गुरुता के घोल में आसव का संधान करने से अभीष्ट मद्योद्गम होता है। इसी लिए हमने उत्तरार्ध में जल की मात्रा दुगुना करने तथा मधुर द्रव्यों को लिखित मात्रा के अनुसार एक साथ न डाल कर आधा-आधा कर के दो बार में डालने का स्थान स्थान पर विशेष द्रष्टव्य में-विधान किया है।

जिन योगों में द्रव और मीठे का मान न लिखा हो उनमें निम्न लिखित परिभाषा के अनुसार कार्य करना चाहिए।

"अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे तुला गुडम्।
क्षौद्रं क्षिपेद् गुडादर्धं प्रक्षेपं दशमांशिकम्॥

अर्थात् जहां अरिष्टों में मान न दिया हो वहां एक द्रोण अर्थात् लगभग तेरह सेर द्रव में पांच सेर गुड़ एवं अढाई सेर शहद तथा प्रक्षेप दसवां भाग डालें। परन्तु द्रव-द्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार इसमें जल की मात्रा दोगुना होनी चाहिए। अर्थात् २६ सेर जल में पांच सेर गुड़ तथा अढ़ाई सेर मधु मिलाना चाहिए।

हमने मधुर द्रव्यों को शास्त्र लिखित मात्रा में एक साथ न डालने का विधान किया है। अब देखना है कि उस शास्त्रलिखित मात्रा को कितनी बार और कितने कितने परिमाण में डालकर पूरा किया जाय।

आसवों में चीनी-मधु तथा गुड़ -ये तीन मधुर पदार्थ डाले जाते हैं। अतः इन तीनों के सम्बन्ध में क्रमशः विचार किया जायगा।

अनुभव से पता चलता है कि दस प्रति शतक से कम मद्यांश होने की दशा में आसव बिगड़ कर खट्टा हो जाता है-सिरकाम्ल में परिवर्तित होने लगता है। इसका अभिप्राय यह हुवा कि हमें १० प्रतिशतक मद्यांश के लिए पर्याप्त मधुरद्रव्य अवश्य डालने चाहिएं। इससे अधिक पन्द्रह-बीस प्रतिशतक में भी हानि कुछ नहीं, केवल आसव की औषधमात्रा कम हो जायगी। परन्तु आबकारी कानून के अनुसार राजाज्ञा के बिना ऐसे आसव बनाना जिनमें कि इतना मद्य हो दण्डनीय है। इस लिए हमें दस बारह प्रतिशतक मद्यांश पर संतोष करके उसी के लिए उचित मधुरद्रव्य लेने चाहिएं।

विज्ञान से ज्ञात होता है कि गन्ने की चीनी से लगभग ५४ प्रतिशतक मद्य बनता है अर्थात् १०० सेर चीनी से ५४ सेर मद्य तैयार होगा। इसको हम निम्नलिखित सूत्र से भली प्रकार समझ सकते हैं।

$$क_{१२}उ_{२२}ओ_{११} + उ_{२}ओ = क_{६}उ_{१२}ओ_{६} + क_{६}उ_{१२} + ओ_{६}$$

गन्ने की चीनी + आसव का जल = फलशर्करा + मधुशर्करा (ग्लुकोज़)

अब यह फल शर्करा तथा ग्लुकोज़ सुराबीज के प्रभाव से निम्नलिखित प्रकार मद्य में परिणत होंगी—

$$क_{६}उ_{१२}ओ_{६} = २क_{२}उ_{६}ओ + २क ओ_{२}$$

फल शर्करा = मद्य + कार्बन द्विओषजिद्

क = कार्बन (Carbon.) उ = उद्रजन (Hydrogen.) ओ = ओषजन (Oxygen.)

कार्बन का परमाणुभार १२, उद्रजन का १ और ओषजन का १६ है। इस परमाणुभार से चीनी के परमाणुओं को गुणा करके जोड़ने से (१४४+२२+१७६) =३४२ होता है। इसी प्रकार मद्योश के परमाणुओं के गुणन फल का जोड़ (२४+६+-१६+)=६२ होता है। इस हिसाब से ३४२ तोले चीनी की फल शर्करा से ६२ तोले मद्य तैयार हुई। इतनीही मधु शर्करा से होगी। इस लिए ३४२ तोले चीनी से मद्य ६२+२=१८४ तोले तैयार हुई। जो कि लगभग ५४ प्रतिशतक है। इसका निष्कर्ष यह हुआ कि एक मन जल में ३२° शतांश पर १०५० आपेक्षिक गुरुत्व का घोल बनाने के लिए यदि आठ सेर सेर चीनी मिलाई जाती है तो उसमें लगभग चार सेर अर्थात् दस प्रतिशतक मद्य तैयार होती है।

इसके आसव में परिणत हो जाने पर पुनः आठ सेर चीनी मिलाने से और दस प्रतिशतक मद्य तैयार होने से कुल बीस प्रतिशतक मद्य तैयार हो जायगी। परन्तु तीसरी बार फिर मीठा मिलाने से और मद्योद्गम न होगा; क्योंकि बीस प्रतिशतक मद्य हो जाने पर सुराबीज निर्जीव हो जाते हैं। इस प्रकार दस प्रतिशतक मद्य के लिए एक मन द्रव में आठ सेर चीनी मिलाना पर्याप्त है।

हमने ऊपर देखा कि गन्ने की चीनी मद्य में परिणत होने से पूर्व मधुशर्करा और फल शर्करा में विघटित हुई। आसव में मधु डालने से सुराबीजों की सहायता से सीधी मद्य बनती है। मधु की शर्करा को पहिले किसी और शर्करा में परिवर्तित होने की आवश्यकता नहीं होती। उसका सूत्र

निम्न प्रकार है—

$$क_६ उ_{१२} ओ_६ = २क_२ उ_६ ओ + २क ओ_२$$

मधु शर्करा = मद्य + कार्बन द्विओषजिद्

मधुशर्करा के परमाणुओं को परमाणुभार से पूर्व रीति से गुणा करके जोड़ने से १८० योगफल होता है; जब कि मद्य के परमाणुओं के भार का योग पूर्ववत् ६२ होता है। इस निष्पत्ति से १८० भाग मधु से ६२ भाग मद्य तैयार हुई। अर्थात् एक मन जल और आठ सेर मधु के घोल में सुराबीज मिला कर संधान करने से लगभग चार सेर मद्य बनेगी जो कि आसव का दस प्रतिशतक है।

इसी प्रकार एक मन जल में आठ सेर गुड़ मिला कर संधान करने से भी दस प्रतिशतक मद्य तैतार होगी।

इस प्रकार साधारणतया आसवों में दस प्रतिशतक मद्यांश के लिए एक मन द्रव में आठ सेर मीठा पर्याप्त होता है। यदि परीक्षा करने पर मद्यांश की मात्रा कुछ कम हो तो और मीठा मिला कर संधान करना चाहिये। शास्त्रों में जहां इससे अधिक मीठा मिलाने का विधान हो, वहां वह दो या तीन बार में विभक्त करके मिलाना चाहिये; अथवा जल का परिमाण बढ़ा देना चाहिये।

मधुर द्रव्यों के आसव में परिणत हो जाने पर आसव का स्वाद मीठा नहीं रहता; उसका आपेक्षिक गुरुत्व भी कम हो जाता है। इसलिए आसव को स्वादिष्ट बनाने तथा सुरक्षित रखने के उद्देश्य से कुछ वैद्य आसव बन जाने के पश्चात्

एक मन आसव में दस सेर मीठा मिलाना प्रशस्त मानते हैं। हमारी सम्मत्ति में मिठास लाने के लिए इतना मीठा मिलाना पर्याप्त है। परन्तु इतना मीठा मिलाने पर भी आसव पूर्ण सुरक्षित न रह सकेगा। क्योंकि मीठा मिलने पर सुराबीज फिर क्रियाशील हो जाते हैं जिससे कि संधान क्रिया पुनः प्रारम्भ हो जाती है। इस लिए आसव बन जाने के पश्चात् और अधिक मीठा मिलाने के साथ साथ सुराबीजों के जीवन व्यापार को सर्वथा नष्ट कर देना भी आवश्यक है। इसके लिए आसवों की बोतलों को जल में रख कर लगभग सत्तर शतांश तक आध घण्टा गरम करना चाहिये। इससे किण्व कीटाणु नष्ट हो जाएंगे और पुनः संधानक्रिया न होने से आसव बोतलों में सदा सुरक्षित रहेगा।

मधुर द्रव्य क्या हों

आसवों में संधान के लिए गुड़, चीनी और शहद इन तीन मधुर द्रव्यों को डालने का उल्लेख योगों में मिलता है। कहीं ये अलग अलग डाले जाते हैं तो कहीं गुड़ या चीनी के साथ मधु डालने का भी विधान है। दोष, दूष्य और व्याधि के अनुसार इनका प्रयोग किया गया हो, ऐसा योगों को देखने से ज्ञात नहीं होता। इनका प्रयोग योगकर्ता ने अपनी रुचि और सुविधा की दृष्टि से किया प्रतीत होता है।

विज्ञान की दृष्टि से शर्करा कार्बन, ओषजन और उद्रजन का समास है। कार्बन के छः अणुओं को इकाई मान कर इसकी दो श्रेणियां है। प्रथम श्रेणी में वे शर्कराएं हैं

जिनमें कार्बन के छः अणु उद्रजन के बारह तथा ओषजन के छः अणुओं से मिलते हैं। इनको अंग्रेजी में मौनोसैकराइड्स कहते हैं। अंगूर आदि फलों की ग्लुकोज़ और मधु इस श्रेणी में मुख्य हैं। इनका रासायनिक सूत्र $क_{६}$ $उ_{१२}$ $ओ_{६}$ है। दूसरी प्रकार की शर्करा में कार्बन के बारह अणु, उद्रजन के बाईस, और ओषजन के ग्यारह अणु मिलते हैं। इन्हें डाईसैकराइड्स कहते हैं। गन्ने की चीनी, दूध की शर्करा तथा जौ आदि अन्नों की शर्कराओं का समावेश इस श्रेणी में होता है। इनका रासायनिक सूत्र $क_{१२}$, $उ_{२२}$ $ओ_{११}$ है। सुराबीज प्रथम श्रेणी की शर्कराओं को सीधा मद्य में परिणत करके आसव का निर्माण करते हैं। इस क्रिया में कार्बन द्विओषजिद् वायु पृथक् हो जाती है और मद्य बन जाती है।

$$क_{६} उ_{१२} ओ_{६} = २ क_{२} उ_{६} ओ + २क ओ_{२}$$

मधु या फल शर्करा = मद्य + कार्बन द्विओषजिद्

दूसरी श्रेणी की शर्कराओं को आसव या मद्य में परिणत होने से पूर्व प्रथम श्रेणी की शर्करा में बदलना पड़ता है। घोल में से सुराबीजों की उपस्थिति में ये जल ले लेती हैं और प्रथम श्रेणी की शर्करा में परिवर्तित हो जाती हैं।

$$क_{१२} उ_{२२} ओ_{११} + उ_{२} ओ = क_{६} उ_{१२} ओ_{६} + क_{६} उ_{१२} ओ_{६}$$

गन्ने की चीनी + जल = मधुशर्करा + फलशर्करा

इससे हमने देखा कि सुराबीज़ चीनी की अपेक्षा मधु या फलों के मीठे से सीधे और जल्दी आसव बनाने की क्षमता रखते हैं।

अनुसन्धानों से पता लगा है कि गुड़ में प्रथम श्रेणी की मधुशर्करा चीनी की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। इस लिए उस का शरीर में पचन सीधा हो जाता है और तत्काल थकान दूर होकर स्फूर्ति अनुभव होती है। सुराशालाओं में तो सैंकडों मन मद्य शीरे से ही बनता है। अनेक वैद्यों का झुकाव आसवों में गुड़ के स्थान पर चीनी प्रयोग करने की ओर है। परन्तु ऊपर के विवेचन से मधु सर्वश्रेष्ठ ठहरता है, फिर गुड़ या शीरा और फिर चीनी। मधु इतनी अधिक मात्रा में सुगमता से प्राप्य नहीं कि सब वैद्यों व फार्मेसियों की अवश्यकता पूरी हो सके। मूल्य की दृष्टि से मधु सब से मंहगा है, फिर उस की प्रामाणिकता में भी संदेह रहता है। चीनी भी गुड़ और शीरे से बहुत मंहगी रहती है। इस लिए उपयोगिता और सस्तेपन की दृष्टि से गुड़ का महत्व अधिक है। गुड़ कम से कम एक वर्ष पुराना लें और देखलें कि वह विशेष खट्टा न हो।

यहां एक और बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है। भौतिक रसायन की दृष्टि से विविध शर्कराओं के सूत्र या गठन में समानता होते हुए भी मनुष्य शरीर पर उनका प्रभाव एक समान नहीं होता। उदाहरणार्थ मधु शर्करा का पचन सीधा हो जाता है उस से उदर में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता; परन्तु दूध की चीनीसे दुग्धाम्ल की उत्पत्ति होती है जिस से कि अजीर्ण की दशा में इस का प्रयोग उचित नहीं माना जाता। मधु रक्त शोधक है और रक्तरोगों में वर्जित नहीं, परन्तु गुड़ या चीनी को रक्त दूषिक समझा गया है। इस ही प्रकार शंख शुक्ति और प्रवाल भौतक रसायन शास्त्र की दृष्टि से खटिक कर्वनित (कैलशियम कार्बो

नेट) हैं, परन्तु इनके गुण धर्म भिन्न भिन्न हैं। इस लिए केवल रासायनिक सूत्र के आधार पर हमें कोई निश्चय नहीं करना चाहिए। प्रत्युत एक ही योग को भिन्न भिन्न मधुर पदार्थ डाल कर बनाना चाहिए और उसका चिकित्सा में प्रयोग करके देखना चाहिए। इस दिशा में परीक्षण और अनुभव करने के बाद ही आसवों में भिन्न भिन्न मधुरद्रव्यों की उपयोगिता का ठीक ठीक निश्चय हो सकेगा।

आसव में सुराबीज मिलाना

"सुराबीजञ्च किण्वकम्" (योगरत्नाकर)

आसव का घोल तैयार कर लेने पर उसमें किण्व या सुराबीज डालने चाहियें। हम देखते हैं कि आम के बीज से आम का ही वृक्ष पैदा होता है, अनार या संतरे का नहीं। मूली के बीज से मूली और गाजर के बीज से गाजर की प्राप्ति होती है। उसमें भी जैसा उत्तम या निकृष्ट बीज होगा वैसा ही फल मिलेगा। खट्टे आम की गुठली से खट्टे ही आम मिलते हैं। अच्छे जामन से दही भी स्वादिष्ट और मधुर जमता है; विकृत खट्टे दही के जामन से दही खट्टा हो जाता है। इसी प्रकार उत्तम आसव की प्राप्ति के लिए उत्तम सुराबीज डालना आवश्यक है। वायुमंडल में अनेक प्रकार के जीवाणु हैं, यह आवश्क नहीं कि उनमें से आसवसजातीय जीवाणु ही घोल में मिलेंगे, अन्य प्रकार के नहीं। यदि तो आसव जातीय जीवाणु मिल गए तो आसव ठीक बन जायगा, अन्यथा नहीं। यदृच्छया हुवा, निश्चित नहीं। परन्तु सुराबीज डालने

से निश्चितरूप से आसव संधान ही होगा; अन्य नहीं। सुरा के साथ बीज शब्द लगाने का अभिप्राय यही है कि सुरा के बीज से सुरा ही उत्पन्न होगी।

सुराबीज डालने के तीन प्रकार प्रचलित हैं।

१. वनस्पतियों द्वारा।

२. आसव की गाद द्वारा।

३. रासायनिक सुराबीजों के द्वारा।

१. कुछ कषायरस प्रधान ऐसी वनस्पतियां हैं जिनमेंकि किण्वकीटाणु प्रचुर मात्रा में रहते हैं। आसवों के योगों में धातकीपुष्प डालने का सर्वत्र विधान है। जहां कहीं अपवाद स्वरूप से इनको डालने का उल्लेख नहीं भी है, वहां भी वैद्य समाज में इसे डालने का नियम है। ऐसा प्रतीत होता है कि सुराबीज के लिए धात की पुष्प का अधिक प्रयोग किया जाता था महुए के फूल सुपारी और बबूल एवं बेर की छाल में भी ये प्रचुर परिमाण में रहते हैं अतः अधिक तीव्र मृतसंजीवनी आदि सुरा बबूल की छाल तथा सुपारी की प्रयोग से बनाई जाती हैं। इसी प्रकार ताड़वृक्ष की मंजरी, गन्ना और खजूर के रस में भी ये किण्वकीटाणु अधिक मात्रा में होते हैं।

२. द्राक्षासव बनाने के समय जो गाढ़ा भाग नीचे रह जाता है; उसे तेज धूप में सुखा कर सुरक्षित रख लेते हैं। इस का किण्व या सुराबीज के रूप में प्रयोग किया जाता है। लगभग २६ सेर द्रव में यह एक सेर मिलाया जाता है। इस से आसव का संधान शीघ्र होता है।

इसी प्रकार जिस पात्र में अनेक वार उत्तम अविकृत आसव बन चुका हो, वह पात्र भी सुराबीज का काम देता है।

३. परन्तु आज कल बड़ी बड़ी आयुर्वेदिक फार्मेसियों में प्रायः रासायनिक सुराबीजों द्वारा संधान करने की विधि प्रचलित है। इसके लिए सुराशालाओं से सूक्ष्म चूर्ण के रूप में भूरे रंग का यीस्ट (Yeast) मिलता है। यह यथा संभव ताजा लेना चाहिये और निम्नलिखित विधि से आसव में मिलाना चाहिये।

गुड़ या चीनी का १०५० आपेक्षिक गुरुत्व का घोल तैयार करके ८२° शतांश तक आग पर उबाल कर ३२° शतांश तक शीतल होने दें। एक अंकित नल (Measuring cylinder) से माप कर ५०० सी. सी. घोल लें। इसमें ५. सी. सी. गंधक का तेजाब और ५ रत्ती या १० ग्रेन अमोनियम सलफेट या अमोनियम फास्फेट मिलाएं। इस मिश्रण को एक गोल पेंदी की कुप्पी में (Round bottom flask) लेकर एक छटांक ताजा यीस्ट डाल कर शीशी के मुख पर रूई का डाट लगा दें। इसमें २४ घण्टे तक संधान व्यापार होने दें।

संधान क्रिया होजाने पर इसे ४ गैलन के कांच के बरतन में १ गैलन १०५० आपेक्षिक गुरुत्व का घोल डाल कर मिला दें और फिर संधान क्रिया को पूर्ण होने दें।

इसमें संधान क्रिया पूर्ण हो जाने पर इसे २४ गैलन के पात्र में ६ गैलन १०५० आपेक्षिक गुरुत्व का घोल डाल कर

---

१ गैलन = ४॥। सेर

मिलादें और २॥ तोले या १ औंस अमोनियम सल्फेट या अमोनियम फास्फेट तथा १० सी० सी० गंधक का तेजाब मिला कर संधान होने दें।

इसे १०० गैलन के पात्र में २५ गैलन १०५० आपेक्षिक गुरुत्व के गुड़ या चीनी के घोल में डाल कर २ औंस अमोनियम फास्फेट और २० सी० सी० गंधक का तेजाव मिला कर दो तीन दिन पड़ा रहने दें।

इस विधि से किण्व कीटाणुओं की वृद्धि की जाती है। २५ गैलन आसव के घोल में यह कीटाणुमिश्रण ६ गैलन और ६ गैलन आसव के घोलमें यह मिश्रण १ गैलन मिलाने से आसव में प्रचुर मद्योद्रम होता है और उसके बिगड़ने की सम्भावना नहीं रहती। एक मास तक संधान की प्रतीक्षा करने की भी आवश्यकता नहीं होती।

यहां हमने गुड़ और चीनी के शुद्ध घोल को लिया है। अरिष्ट के क्वाथ में गुड़ आदि मधुर द्रव्यों का १०५० आपेक्षिक गुरुत्व का घोल लेकर भी इसी प्रकार किण्वकीटाणुओं और मद्यांश की वृद्धि की जा सकती है। अथवा आसव का घोल बनाने की प्रक्रिया के साथ ही साथ किण्व कीटाणुओं की वृद्धि का यह उपक्रम करते रहना चाहिए और घोल तैयार हो जाने पर ऊपर लिखे हिसाब से किण्वकीटाणुओं का मिश्रण मिलाते रहना चाहिये।

आसव में धातु मिलाना

कुछ आसवों में लोह, मण्डूर, ताम्र और स्वर्ण धातुऐं

मिलाने का विधान है इनमें से ताम्र तथा स्वर्ण के प्रयोग एकाध ही हैं। अधिकांश प्रयोग लोह एवं मंडूर के ही मिलते हैं। इन धातुओं को आसव में मिश्रण विधि भिन्न भिन्न है।

लोह व मण्डूर का मिश्रण

लोह और मंडूर को विलीन करने के लिए अति प्राचीन काल से हरीतकी एवं त्रिफला का उपयोग होता रहा है। चरक संहिता में चिकित्सा स्थान के प्रथम अध्याय में त्रिफला रसायन के पाठ में लिखा है—

त्रिफलेनायसीं पात्रीं कल्केनालेपयेन्नवाम्।
तमहोरात्रिकं लेपं पिबेत् क्षौद्रोदकाप्लुतम्॥

अर्थात् लोहे के नए पात्र में त्रिफला का लेप करके २४ घण्टे के बाद मधु और जल में घोल कर इस लेप को पी लेने से रसायन का गुण होता है। इसका अभिप्राय यह हुआ है कि त्रिफला चौबीस घन्टे में लोह के उचित अन्श को विलीन कर लेता है।

आसवों में लोह और मंडूर को मिलाने के लिए उनका सूक्ष्म चूर्ण लेना चाहिए। इस चूर्ण को सीधा त्रिफला के घोल में न डाल कर पहले केवल हरीतकी के चूर्ण और जल में मिला कर तीन दिन खरल करें। फिर बहेड़े और आमले का चूर्ण मिलाकर खरल करें और जल मिला कर उसे एक सप्ताह पड़ा रहने दें। इस प्रकार लोह व मंडूर त्रिफला में विलीन हो जायगा। तदनन्तर इसे क्वाथ आदि में मिला कर आसव सिद्ध करना चाहिये।

रस ग्रंथों में लिखी विधि के अनुसार लोहचूर्ण और मण्डूर को आग पर खूब तपा कर यदि त्रिफला, गोमूत्र, तिल

तैल, कुलत्थकाथ और कांजी में सात सात बार बुझा लिया जाय तो लोह चूर्ण और भी सूक्ष्म होजायगा और इसके व्यवहार से अशुद्ध लोह के सेवन से होने वाले मलबन्ध आदि उपद्रव भी नहीं होंगे।

सामान्यतः आचार्यों ने यद्यपि आसवों में लोहचूर्ण डालने को लिखा है तथापि ऊपर लिखी विधि से लोहचूर्ण को शुद्ध करके तदनन्तर त्रिफला के योग से बीस इकोस बार गजपुट देकर भस्म बना कर मिलाने से आसव और भी अधिक गुण कारक सिद्ध होगें।

ताम्र मिश्रण

ताम्रधातु के विषय में शास्त्रकारों ने लिखा है—

न विषं विषमित्याहुस्ताम्रं च विषमुच्यते।
एको दोषो विषेत्वष्टौ दोषास्ताम्रे प्रकीर्तिताः॥
तस्माद् विशुद्धं ताम्रं हि ग्राह्यं रोगोपशान्तये॥

रसेन्द्र सार संग्रह

अर्थात् विष को विष नहीं कहा जाता, ताम्र को विष कहा जाता है। क्योंकि विष में तो केवल एक दोष है, जब कि ताम्र में आठ दोष हैं। इसलिए रोग शान्ति के लिए शुद्ध ताम्र ही लेना चाहिये। वस्तुतः ताम्र को शुद्ध करके, भस्म बना और अमृतीकरण करने के पश्चात् ही आसव में मिलाना चाहिये। अन्यथा ताम्रयुक्त आसव से वमन, अरुचि, भ्रम, मूर्छा आदि उपद्रव होने की संभावना रहेगी।

स्वर्ण मिश्रण

सारस्वतारिष्ट में सूक्ष्म स्वर्णपत्र मिलाने का आदेश है। आसव के सिद्ध हो जाने की परीक्षा के प्रसंग में "हेम पत्रे क्षयं गते" ऐसा उल्लेख है। इसका अभिप्राय यह है कि स्वर्ण पत्र अरिष्ट में लीन हो जाने चाहियें। परन्तु अनुभव से पता चलता है कि स्वर्णपत्र लीन नहीं होते; अपितु पात्र के तल में प्रक्षेप के साथ बैठ जाते हैं। इसलिए अनेक विद्वान् स्वर्ण पत्र के स्थान पर पाश्चात्यविधि से बने हुए स्वर्णलवण (Gold chlroide) का प्रयोग करने के पक्ष में हैं। यह सुवर्णलवण अंग्रेजी औषध विक्रेताओं की दूकान से मिल सकता है। यदि स्वयं बनाना हो तो ३ तोले शुद्ध सुवर्ण लेकर आतशी शीशी में डाल स्पिरिट लैंप पर रख कर गरम करें। इसमें नमक और शोरे का मिश्रित तेजाब $\frac{1}{8}$ हिस्सा मिलावें। नमक का तेजाब (Acid Hydrochloric) ३ औंस ३ ड्राम और शोरे का तेजाब (Acid Nitric) ४ औंस मिला कर उसमें से उपयोग में लें। इस तेजाब में से थोड़ा थोड़ा सम्हाल कर डालते रहें।

सुवर्ण का रस बन जाने पर दस तोले सैंधानमक डालें। जब जल सूख जाय और सुवर्ण का रंग नारंगी के सदृश प्रतीत होने लगे तब शीशी को उतार कर सुवर्णलवण निकाल लें।

सुवर्णलवण की मात्रा $\frac{1}{60}$ से $\frac{1}{10}$ ग्रेन है। क्रमशः

मात्रा बढ़ा कर ३ ग्रेन तक दे सकते हैं। इस औषध में रक्त-शोधक, उत्तेजक, बल्य, कामोद्दीपक और रसायन गुण हैं। डाक्टरी में इसका प्रयोग वातवहा नाड़ियों की निर्बलता, चिरकारी वृक्कदाह, शिरःशूल, कष्टार्तव, गर्भाशय का चिरकारी प्रदाह, बीजाशय में वातजशूल, राजयक्ष्मा, श्वासरोग, मृगी, हिस्टीरिया, आक्षेपक, वात और नपुंसकता आदि रोगों में होता है।

इस लवण के अधिक मात्रा में सेवन करने से पारद के समान मुंह आ जाता है; तथा आमाशय और अंत्र में उग्रता की उत्पत्ति हो जाती है। फिर क्षुधानाश, उदरशूल, जुकाम, व्याकुलता, हाथ पैरों में पक्षाघात और श्वासावरोध होकर मृत्यु भी हो जाती है।

सारस्वतारिष्ट के गुण शास्त्र में इस प्रकार वर्णित किए हैं:—

आयुर्वीर्य धृतिं मेधां बलं कांतिं विवर्धयेत्।
वाग्विशुद्धिकरो हृद्यो रसायनवरः स्मृतः॥
बालकानाञ्च यूनाञ्च वृद्धानाञ्च हितः सदा।
नरनारीहितो नित्यं परमोजस्करो मतः॥
रजोदोषेण दुष्टानां योषितां शुक्रदोषिणाम्।
पुंसाञ्चापि शुभकरः, सर्वदोषहरो मतः॥

सुवर्ण लवण और अरिष्ट के गुणों को ध्यान से देखने पर पाठकों को दोनों के गुणों में समानता सुगमता से समझ में आ जाएगी और इस आसव में सुवर्णलवण का प्रयोग

करना भी उचित एवं संगत प्रतीत होगा। यह लवण एक द्रोण (तेरह सेर) जल में छः रत्ती से दो माशे तक डाला जाएगा।

परन्तु स्वर्णलवण की अधिक मात्रा के घातक परिणाम भी ऊपर दिखलाए गए हैं। सारस्वतारिष्ट या ऐसा ही कोई अन्य योग रोगी को चिरकाल तक सेवन कराना आवश्यक हो सकता है। सुवर्णलवणमिश्रित अरिष्ट अधिक समय तक पिलाने से लवण की मात्रा शरीर में अधिक पहुँच सकती है। इसलिए हमारी सम्मति में यह लवण अरिष्ट के बनते समय उसमें न मिला कर रोगी को सेवन कराने के समय जब तक आवश्यक हो आसव में मिला कर देना चाहिये। फिर लवण रहित अरिष्ट चिरकाल तक सेवन कराया जा सकता है।

यहां एक शंका होती है। यदि स्वर्णपत्र आसव में लीन नहीं होते और सुवर्णलवण का प्रयोग अवाञ्छनीय है तो क्या स्वर्णपत्र आसव में लीन न होने पर भी कोई गुण नहीं करेंगे ?

चन्द्रोदय रस में स्वर्णपत्र शीशी के तल में ही रह जाते हैं; फिर भी क्या रससिन्दूर और चन्द्रोदय के गुणों में विशिष्टता नहीं ? यूनानी वैद्य बिना भस्म किये ही सोने के वरक रोगियों को खिलाते हैं जो कि शरीर का भाग न बन कर अपरिवर्तित रूप में ही मल के साथ निकल जाते हैं; क्या उससे कोई लाभ नहीं होता ? बच्चों को पैदा होते ही सोने की शलाका से साफ

बार मधु और घृत चटाने का शास्त्रीय विधान क्या सर्वथा निरर्थक है ?

इन दृष्टान्तों में कुछ हेत्वाभास हैं। चन्द्रोदय में पारद सुवर्ण के संस्कार ग्रहण करने वाला पदार्थ है। आयुर्वेद में स्वर्णपत्र सेवन की प्रथा नहीं है; वहां धातु को सूक्ष्मतम रूप में, देना ही उचित माना गया है। घृत और मधु में स्वर्ण को घिस कर देने के गुण शास्त्र में पाए जाते हैं। उसमें स्वर्ण मृदु धातु होने से संस्कारवाही घृत और मधु में घिसने से अपने कुछ संस्कार व गुण दे देता है। परन्तु अरिष्ट में इनमें से कोई भी विकल्प नहीं। उसमें डाले स्वर्णपत्र आसव में न घुलने के कारण शरीर में भी नहीं जाते वे केवल तल में ही बैठ जाते हैं।

स्वर्णभस्म भी जल में अविलेय है। उसके लघु और सूक्ष्मकण तो द्रव के ऊपर तैरते रहेंगे और जिनमें कुछ गुरुता होगी वे नीचे बैठ जायेंगे।

इस लिए हमारे मत में अरिष्ट में स्वर्ण धातु मिलाने से कुछ लाभ नहीं। उस के बिना भी अरिष्ट यथेष्ट गुणदायक होता है। आवश्यक होने पर स्वर्णभस्म पृथक् रूप से सेवन करवाई जा सकती है। यदि अरिष्ट में स्वर्ण मिलाना ही हो तो लवण रूप में मिलाएं परन्तु अधिक काल तक अरिष्ट का सेवन न कराएं।

आसवों में सुगन्धित द्रव्य मिलाना

दशमूलारिष्ट आदि अनेक योगों में केसर, कस्तूरी तथा कपूर आदि सुगन्धित पदार्थ मिलाने का विधान है। ये

पदार्थ आसव में तब मिलाने चाहियें जब वह आसव परीक्षा करने पर सिद्ध हुवा समझा जा सके। सुगन्धित पदार्थ मिलाने के बाद पात्र के मुख को बन्द करके ऋतु के अनुसार १-२ सप्ताह तक रख देना चाहिये। अथवा आसव को छान कर बोतलों में भरते समय इन सुगन्धित द्रव्यों को आसव के द्रव में घोट कर या मद्यसार में घोलकर सीधा बोतलों में ही यथाभाग मिला देना चाहिये।

आसव पर ऋतु का प्रभाव

हम पहिले बतला चुके हैं कि आसव निर्माण एक रासायनिक प्रक्रिया है और प्रत्येक रासायनिक प्रक्रिया के लिए एक निश्चित तापमान की आवश्यकता है। आसव निर्माण के लिए ३२°–३६° शतांश का तापमान सब से अधिक उपयुक्त रहता है। अधिक गर्मी या सर्दी की ऋतुएं उचित प्रबन्ध के अभाव में आसव बनाने के लिए उपयुक्त नहीं। शरद् और वसन्त ऋतु का समय सब से प्रशस्त है। आधे भाद्रपद से कार्तिक तक तथा आधे फाल्गुन से वैशाख तक तापमान को स्थिर रखने के लिए कोई विशेष प्रबन्ध किए बिना भी आसव सुगमता से ठीक बन जाते हैं।

वर्षा ऋतु में तापमान प्रायः बदलता रहता है। अतः इस ऋतु में आसव नहीं बनाने चाहियें।

ग्रीष्मऋतु में शीतकाल की अपेक्षा आसव शीघ्र उठता है; तीन से चार दिन में आसव निर्माण की रासायनिक

प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। परन्तु बाह्य गर्मी के प्रभाव से आसव के घोल में इतनी ऊष्मा बढ़ जाती है कि किण्व-कीटाणु निर्जीव हो जाते हैं और आसव निर्माण की प्रक्रिया रुक जाती है। इस लिए ग्रीष्म ऋतु में तापमान को कम करने की आवश्यकता रहती है। इसके लिए ठण्डे जल के नल आसव के पात्र में से गुज़ारने चाहियें, या बरफ की पोटली रबड़ की थैलियों में भरकर आसव के घोल में डालनी चाहियें। अथवा कमरे में बरफ की शिलाएं रखकर बिजली के पंखे चलाने चाहियें।

शीत ऋतु में आसवसंधान सात से पन्द्रह दिन में अर्थात ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा लगभग दुगने समय में प्रारम्भ होता है। यदि तापमान ठीक न होगा तो महीनों पड़े रहने पर भी आसव नहीं बन सकेगा। इसलिए सूखी भूमि में गढा खोद कर गेहूं के भूसे या जौ के ढेर में मट्टी या चीनी के पात्र को गले तक ढक कर गढा बन्द कर देना चाहिये। सूखा गोबर भी-जो ऐसे ढेर में से लाया गया हो जहां कि उसका खाद बनना प्रारम्भ हो गया हो—गेहूं के भूसे या जौ के ढेर की अपेक्षा (आसव की ऊष्मा को स्थिर रखने के लिए) अधिक उपयोगी है। यह गोबर ऊष्मा उत्पन्न कर आसव बनने में सहायक होगा। अनेक योगों में घोड़े की लीद में भी पात्र रखने का विधान है।

यदि आसव अधिक परिमाण में सीमेंट के हौजों या लकड़ी के ढोलों में बनाने हों, तो उन हौजों या ढोलों को

गढ़े में रखने की अपेक्षा कमरे को गरम रखना अधिक प्रशस्त होगा। चार पांच सौ गैलन आसव के ढोल को गढा खोद कर ज़मीन में उतारना व्यवहारिक नहीं। ऐसी अवस्था में कमरे को गरम जल की भाफ के नलों या बिजली के हीटरों से गरम करने का प्रबन्ध करना चाहिये। इतना प्रबन्ध करना जिनकी सामर्थ्य में न हो वे निर्धूम जलते हुए कोयलों की अंगीठियों से कमरे को गर्म कर सकते हैं।

नोट—आसव के घोल में मिठास शेष हो परन्तु संधान-व्यापार बन्द होजाए तो तापमान पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

सन्धानावधि

"सप्ताहमुष्णे द्विगुणं तु शीते स्थितं जलद्रोणयुतं पिबेन्ना।"
"यवेषु दशरात्रस्थं ग्रीष्मे द्विः शिशिरे स्थितम्॥"

शास्त्रों में आसवों के संधान की अवधि उनके योगों के पाठ में दी गई है। कहीं एक मास की अवधि लिखी गई है तो कहीं पन्द्रह दिन की। परन्तु आसव बनना वायुमंडल के तापमान पर आश्रित है। गर्मियों में सर्दियों की अपेक्षा आसव जल्दी बनता है। इस लिए सब ऋतुओं में दिनों की एक ही मर्यादा नहीं हो सकती। गदनिग्रह के कर्ता वैद्यवर सोढल ने शोफाधिकारोक्त अष्टशतारिष्ट में ग्रीष्मऋतु में सात दिन और शीत में द्विगुण अर्थात् चौदह दिन की अवधि लिखी है। ग्रहणी के बीजकारिष्ट में ग्रीष्मऋतु के लिए दस दिन

और शीतऋतु के लिए द्विगुण अर्थात् बीस दिन की मर्यादा बांधी है। इससे स्पष्ट है कि संधानावधि सब ऋतुओं में एक समान नहीं होती। साधारणतया गर्मियों में चौदह-पन्द्रह दिन और शीतऋतु में इक्कीस दिन से एक मास तक की अवधि में आसव-संधान पूर्ण हो जाता है।

ऊपर दिए गए दो उद्धरणों में पाठक देखेंगे कि एक ही ऋतु में दो भिन्न भिन्न आसवों के लिए भी संधानावधि भिन्न भिन्न बतलाई हैं। एक के लिए ग्रीष्म ऋतु में सात दिन की मर्यादा लिखी है जब कि दूसरे के लिए उसी ऋतु में दस दिन की। इसी प्रकार बहुत आसवों के योगों में 'पक्षाज्जातरसं पिबेत्' पन्द्रह दिन की अवधि लिखी है। इससे यह प्रकट होता है कि केवल बाह्य तापमान के आधार पर ही अवधि निश्चित नहीं की जाती, अपितु आसव द्रव्यों के आधार पर भी उसमें भेद हो जाता है।

पक्वापक्व परीक्षा

पूर्ववर्णित विधि के अनुसार उपर्युक्त पात्र में आसव-घोल में औषधियों का प्रक्षेप तथा किण्वकीटाणु डाल देने से तीन चार दिन में उसमें रासायनिक परिवर्तन प्रारम्भ हो जाता है। यदि पात्र का मुख छोटा और बंद है तो उसके साथ कान लगाने से 'सूं सूं' का शब्द सुनाई पड़ता है और उसके मुख को खोलकर उसमें जलती मोमबत्ती या दियासलाई ले जाने से वह बुझ जाती है। सीमेंट के हौज़ में उसके मुख

के छोटे ढक्कन को उठा कर जलती बत्ती ले जाएं तो वहां वह बुझ जाती है, घोल में बुदबुदे उठते हुए दीखते हैं और 'सूं सूं' का शब्द भी सुनाई देता है। इससे समझा जाता है कि आसव बनने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई है अर्थात् मीठा मद्य और कार्बनद्विओषजिद् वायु के रूप में परिणत हो रहा है। कार्बनद्विओषजिद् वायु की उपस्थिति की परीक्षा चूने के पानी से भी हो सकती है। एक कांच की शलाका को चूने के पानी में डुबा कर पात्र के मुख को धीरे से खोलकर उस में ले जाएं तो शलाका स्थित चूने का पानी दूध के समान श्वेत हो जायगा। जब तक पात्र में इस वायु की उपस्थिति सिद्ध हो: घोल में बुदबुदे उठते दीखते हों और 'सूं सूं' का शब्द सुनाई देता हो तब तक आसव को अपक्व समझना चाहिये। पात्र में कार्बनद्विओषजिद् वायु न रहे, बुदबुदों का उठना शान्त हो जाय, घोल में मिठास के स्थान पर तिक्तता, कटुता तथा तीक्ष्णता आगई हो, धातकीपुष्प आदि प्रक्षेपद्रव्य पात्र के तल में बैठ गए हों और छाने हुए घोल का आपेक्षिक गुरुत्व पर्याप्त कम हो गया हो तो समझना चाहिये कि आसव पक्व है।

थोड़े आसव को छानकर बोतलों में भरकर डाट लगाकर जोर से हिलाएं। आसव कच्चा होगा तो खूब झाग आएगी और डाट उड़ जाएगा। अथवा डाट खोलने के समय बलपूर्वक वायु निकलेगी। आसव पक्व होगा तो झाग नहीं आएगी, कार्क भी नहीं उड़ेगा।

आसव में मद्यांश के प्रतिशतक मान की भी आगे लिखी

विधि के अनुसार जांच करनी चाहिये। आसव यदि पक्क हो और उसमें दस प्रतिशतक मद्य विद्यमान हो तो उसे दूसरे पात्रों में आठ दस मास या दो तीन वर्ष की अभीष्ट अवधि तक सुरक्षित रखने के लिए छान लेना चाहिये। मद्यांश कम हो तो और मीठा मिला कर पुनः संधान होने दें। आसव अपक्क हो तो दो चार दिन और प्रतीक्षा करें तथा तापमान पर ध्यान देकर पुनः ऊपर लिखी समग्र प्रक्रिया करें।

आसव में अम्लता

मद्यस्याम्लस्वभावस्य चत्वारोऽनुरसाः स्मृताः।
मधुरश्च कषायश्च तिक्तः कटुक एव च ॥
सर्वेषां मद्यमम्लानामुपर्युपरि तिष्ठति ॥

(च० सं० मदात्यय चि०)

"अम्ल पाकरसं सरम्"

अ. हृ.

विनष्टमम्लतां यातं मद्यं वा मधुरद्रवः।
विनष्टः संधितो यस्तु तच्चुक्रमभिधीयते ॥

(शा० सं०)

अब तक के लेख से पाठकों के हृदय पर यह बात भली प्रकार अंकित हो गई होगी कि आसव मद्यजातीय औषध है। आसव में अम्लता होनी चाहिये या नहीं यह विचार करते हुए भी हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि आसव मद्य से भिन्न पदार्थ नहीं—भले ही इनको औषध मात्रा से अधिक पीने पर भी मद न होता हो।

मद्य में अम्लता के संबन्ध में दो तरह के शास्त्र में वचन हैं। चरक संहिता के ऊपर दिए गए उद्धरण में मद्य को 'अम्लस्वभाव' वाला कहा गया है और मधुर, तिक्त, कटु तथा कषाय ये चारों रस उसके अनुरस बतलाए गए हैं। लवण-रस मद्य में नहीं होता। इसका अभिप्राय यह हुआ कि मद्य का स्वाभाविक मुख्य रस अम्ल होना चाहिये, क्यों कि शेष चार रस गौण हैं। इसी प्रकार आगे अम्ल पदार्थों में मद्य को ऊंचा स्थान दिया है। मद्य के ही गुणों में 'प्रकृत्या मद्यमम्लोष्णमम्लं चोक्तं विपाकतः' मद्य को अम्लरस तथा अम्लविपाक वाला कहा गया है।

इसके विपरीत शार्ङ्गधर संहिता के उद्धरण में बतलाया गया है कि मधुरद्रव या मद्य बिगड़ कर अम्ल हो जाने पर सिरका कहा जाता है।

इन दोनों पक्षों में सामंजस्य कैसे हो ?

इसी प्रसंग में टीकाकार चक्रपाणि ने 'प्रकृत्या मद्यम्लो-ष्णम्' की टीका में लिखा है 'यद्यपि च मद्ये पीयमाने नाम्ल-रसता प्रतीयते व्यक्ता, तथापि दन्तहर्षमुखस्रावाद्यम्लकार्य कर्तृत्वादम्लमेव। वचनं हि 'अम्लानि चाम्लप्रभावानि चाम्लमेव कृत्वोपदेक्ष्यामः।' अर्थात् यद्यपि मद्य पीने पर व्यक्त अम्लरस का अनुभव नहीं होता, परन्तु दन्तहर्ष, मुखस्राव आदि अम्ल-कार्य करने के कारण मद्य अम्ल है।

रसायन शास्त्र के अनुसार विविध फार्मेसियों के आसवों का विश्लेषण करने पर उनमें टार्टरिकाम्ल, दुग्धाम्ल तथा सिरकाम्ल की उपस्थिति पाई गई है, जैसा कि निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है—

क्रम सं०	नाम आसव	नाम फार्मेसी	मद्यांश	अम्लांश सिरकाम्ल	दुग्धाम्ल टार्टरिकाम्ल	योग
१	द्राक्षासव	अलेम्बिक	६.४१	.२४	.५२५	.७६५
२	द्राक्षासव	झण्डू	७.७६	.२४	.४५	.६६
३	द्राक्षासव	वैद्यनाथ	५.१३	.३	१.०२	१.३२
४	द्राक्षासव	गुरुकुल कांगड़ी	७.०८	.०६	.४५	.५१
५	द्राक्षारिष्ट	झण्डू	२.१७	.०६	.६	.६६
६	द्राक्षारिष्ट	वैद्यनाथ	७.०८	.१२	.६	१.०२
७	द्राक्षारिष्ट	गुरुकुलकांगड़ी	४.५१	.७८	.९९	१.७७
८	खदिरारिष्ट	झण्डू	८.४६	.२४	.६३	.८७
९	खदिरारिष्ट	गु. कु. कांगड़ी	७ ०८	.४२	१.००	१.४०
१०	कुमार्यासव	झण्डू	७.०८	.६६	.७२	१.३८
११	कुमार्यासव	वैद्यनाथ	२.१७	.४८	१.०८	१.६५
१२	कुमार्यासव	गु. कु. कांगड़ी	१.६१	१.८	७२	२.५२
१३	लोहासव	झण्डू	६.६१	.०६	.७२	१.३८
१४	पुनर्नवासव	गु.कु. कांगड़ी	१२.५	.४५	.६	१.०५
१५	विडंगारिष्ट	गु.कु. कांगड़ी	१२.५	.३	.५	.८

यह तालिका एक एक बार के नमूनों की परीक्षा करके बनाई गई है। प्रत्येक बार के निर्माण में मद्य तथा अम्ल का यही मान हो, यह आवश्यक नहीं।

इन परीक्षित आसवों में दो प्रतिशतक से अधिक

अम्ल की उपस्थिति साधारणतया नहीं पाई गई। इसमें भी सिरकाम्ल १% से अधिक नहीं। इस प्रकार चक्रपाणि की टीका तथा इस तालिका के आधार पर चरकसंहिता एवं अष्टांगहृदय के ऊपर दिए गए उद्धरणों का अभिप्राय यह हुआ कि आसव का मुख्य रस अम्ल है, परन्तु वह २% से अधिक न होना चाहिये जिससे कि वह अव्यक्त रहे, अन्य मधुर तिक्त, कषाय और कटु इन चार अनुरसों को सर्वथा अभिभूत करके केवल अम्ल रस ही व्यक्त न हो। जब अम्लरस इससे अधिक इतना बढ़ जाए कि सब अनुरसों की अनुभूति नष्ट हो जाए तो समझना चाहिये कि आसव बिगड़ कर सिरकाम्ल अर्थात् सिरका बन गया है।

यहां एक बात और स्मरण रखनी चाहिये कि सिरकाम्ल की उत्पत्ति आसव बनने के पीछे होती है। आसव के अणु वायु की ओषजन के परमाणु को लेकर सिरका बनाते हैं। आसव में चुक्राम्ल की थोड़ी बहुत उपस्थिति पाई ही जाती है। अतः वायु के स्पर्श से चुक्राम्ल की वृद्धि होती रहने की संभावना रहती है। इस लिए आसव को वायु के स्पर्श से सब संभव उपायों से बचाना चाहिये।

आसव में अम्ल की परीक्षा

आसव में कितना अम्ल है? इसकी जांच निम्न लिखित विधि से की जाती है।

२० सी० सी० आसव में ८० सी० सी० शुद्ध जल मिला कर इस में से २० सी० सी० लेकर एक शीशी में डालें

इसी प्रकार १००० सी० सी० शुद्ध जल में ४ ग्राम सोडा-काष्टिक डाल कर घोल बनालें और इसमें से ५० सी० सी० घोल एक [1]ब्यूरेट में डालें। आसव के २० सी० सी० घोल में फेना-फ्थलीन घोल की एक दो बूंदें मिला देनी चाहियें। १०० सी. सी. जलाने की शराब में ५ ग्राम फेनाफ्थलीन मिलाने से यह घोल तैयार हो जायगा। अब सोडाकास्टिक के घोल को ब्यूरेट द्वारा धीरे धीरे आसव के घोल में तब तक छोड़ते रहना चाहिये जब तक कि आसव का घोल हलके गुलाबी रंग का न होजाए। अब ब्यूरेट के अंकों को पढ़ कर लिखलें। इस प्रकार तीन बार करें। तीन बार के अंकों की औसत को ·००६ से गुणा करने से २० सी० सी० आसव में चुक्राम्ल की मात्रा ज्ञात होती है। २० सी० सी० आसव तथा इस प्रकार प्राप्त सिरकाम्ल की मात्रा को ५ से गुणा कर देने पर आसव में सिरकाम्ल का प्रतिशत मान ज्ञात हो जायगा।

साधारण परीक्षा नीले लिटमसपत्र से भी की जाती है। आसव में सिरकाम्ल होने पर इस पत्र को भिगोने से वह लाल रंग का हो जायगा।

आसव में मद्यांश का प्रतिशतक मान जानने की विधि

पहिले आसव को तिर्यक्पातन विधि से परिस्रुत करें। ८० सी. सी आसव में १० सी० सी० जल मिला कर तिर्यक्-पातन कुप्पी (Distillation Flask) में डालें। इसकी नली

---

[1]ब्यूरेट एक विशेष आकार की कांच की नली है, जो विज्ञान के उपकरण विक्रेताओं से प्राप्त हो सकती है।

को घनीकारक (Condenser) के साथ कार्क में से इस प्रकार जोड़ दें कि आसव की वाष्प बाहिर न निकल सके। घनीकारक में रबड़ की दो नलियां लगादें; एक जिससे ठण्डा जल इसमें आ सके और आसव की वाष्प को शीतल करके द्रव रूप में जमा सके। दूसरी जिससे भाफ से गरम हुवा पानी बाहर निकलता रहे। घनीकारक के दूसरी ओर एक और शीशी लगादें। शीशी के मुख पर कार्क लगाकर, घनीकारक का संबन्ध इस कार्क में से शीशी के साथ करदें। आवश्यकतानुसार इस शीशी को जलपात्र पर रखा जा सकता है। यह प्रबन्ध हो जाने पर तिर्यक्पातन कुप्पी के नीचे मट्टी के तेल का स्टोव जलाएं। धीरे धीरे आसव की मद्य वाष्प बन कर घनीकारक में से शीतल होती हुई, दूसरी ओर लगी हुई शीशी में द्रव रूप में संचित होती जायगी।

एक २५. सी. सी. का गुरुत्वमापक शीशी (Specific Gravity bottle) लेकर खाली तोल लें। फिर आसव के परिस्रुत मद्य को इसमें भर कर तोल लें। इस तोल में से शीशी का भार कम कर देने से मद्य का भार ज्ञात हो जायगा। २५ सी. सी. जल का भार २३° शतांश पर २४. ६१० ग्राम होता है। इससे मद्य के भार को दशमलव गणित की रीति से भाग देकर आपेक्षिकगुरुत्व ज्ञात हो जायगा। इस आपेक्षिकगुरुत्व के अनुसार पृष्ठ ५६ में दी हुई तालिका से आसव में मद्य का प्रतिशतक मान देखा जा सकता है। यह तालिका १५. ५° शतांश तापमान को आधार मानकर बनाई गई है। पूर्वोक्त परीक्षण जितने शतांश तापमान पर किया गया हो उसमें से इसे घटा कर शेषफल

को ·०००२ से गुणा करके गुणनफल को पूर्वप्राप्त आपेक्षिक गुरुत्व में जोड़ दें। इस योगफल के सामने मद्य का प्रतिशतक मान मिलेगा।

उदाहरण—

२३° शतांश पर २५ सी० मी० आसव सहित शीशी का भार	=	३८.१११ ग्राम
रिक्त २५. सी. मी. परिमाण की शीशी का भार	=	१३.६१०
२५. सी. सी मद्य का भार	=	२४.५०१ ग्राम
२५. सी. सी. जल का भार	=	२४.६१० ग्राम

२५ सी. सी. मद्य के भार २४.५०१ ग्राम को २५ सी० सी० जल के भार २४.६१० से भाग देने से ·९८३५ भागफल प्राप्त हुआ। यह २५ सी० सी० मद्य का आपेक्षिकगुरुत्व है। तालिका में १५.५° शतांश तापमान पर आपेक्षिकगुरुत्व के अनुसार मद्य का प्रतिशतक मान दिया है। यह परीक्षण २३° शतांश पर किया गया है। अतः उसमें से तालिका का शतांश तापमान १५.५° घटाकर शेष ७.५° से ·०००२ को गुणा करके गुणनफल ·००१५ को ·९८३५ में जोड़ देने से ·९८५० आपेक्षिकगुरुत्व प्राप्त हुआ। तालिका में ·९८५ आपेक्षिक-गुरुत्व के सामने के कोष्ठ में अंकित संख्या ६.१८ इस आसव में मद्य का प्रतिशत मान है।

मद्यांश-तालिका

उत्तर प्रदेश की राजकीय रसायनशाला के अनुसार

आपेक्षिक गुरुता १५.५° श० पर	तोल प्र० सैं०	आपेक्षिक गुरुता १५.५° श० पर	तोल प्र० सैं०
०. ९९९	०. ५३	०. ९८१	१२, २०
०. ९९८	१. ०७	०. ९८०	१२. ९९
०. ९९७	१. ६१	०. ९७९	१३. ९९
०. ९९६	२. १७	०. ९७८	१४. ६१
०. ९९५	२. ७३	०. ९७७	१५. ४३
०. ९९४	३. ३१	०. ९७६	१६. २५
०. ९९३	३. ९०	०. ९७५	१७. ०८
०. ९९२	४. ५१	०. ९७४	१७. ९०
०. ९९१	५. १३	०. ९७३	१८. ७२
०. ९९०	५. ७६	०. ९७२	१९. ५३
०. ९८९	६. ४१	०. ९७१	२०. ३४
०. ९८८	७. ०८	०. ९७०	२१. १४
०. ९८७	७. ७६	०. ९६९	२१. ९३
०. ९८६	८. ४६	०. ९६८	२२. ७१
०. ९८५	९. १८	०. ९६७	२३. ४८
०. ९८४	९. ९१	०. ९६६	२४. २३
०. ९८३	१०. ६५	०. ९६५	२४. ८७
०. ९८२	११. ४२	०. ९६४	२५. ६८

आपेक्षिक गुरुता २५° ५' श० पर	तोल प्र० सैं०	आपेक्षिक गुरुता २५° ५' श० पर	तोल प्र० सैं०
०.९६३	२६.३७	०.९४२	३८.६४
०.९६२	२७.०६	०.९४१	३९.१५
०.९६१	२७.७३	०.९४०	३९.६५
०.९६०	२८.३९	०.९३९	४०.१५
०.९५९	२९.०३	०.९३८	४०.६५
०.९५८	२९.६६	०.९३७	४१.१५
०.९५७	३०.२८	०.९३६	४१.६४
०.९५६	३०.९०	०.९३५	४२.१३
०.९५५	३१.५०	०.९३४	४२.६२
०.९५४	३२.०९	०.९३३	४३.११
०.९५३	३२.६७	०.९३२	४३.५९
०.९५२	३३.२५	०.९३१	४४.०६
०.९५१	३३.८१	०.९३०	४४.५३
०.९५०	३४.३७	०.९२९	४५.००
०.९४९	३४.९२	०.९२८	४५.४७
०.९४८	३५.४६	०.९२७	४५.९४
०.९४७	३६.००	०.९२६	४६.४०
०.९४६	३६.५४	०.९२५	४६.८७
०.९४५	३७.०७	०.९२४	४७.३३
०.९४४	३७.६०	०.९२३	४७.७९
०.९४३	३८.१२	०.९२२	४८.२५

आपेक्षिक गुरुता १५.५ श० पर	तोल प्र० सैं	आपेक्षिक गुरुता १५.५ श० पर	तोल प्र० सैं
०.९२१	४८.७१	०.९१०	५३.६५
०.९२०	४९.१७	०.९०९	५४.१०
०.९१९	४९.६३	०.९०८	५४.५४
०.९१८	५०.०८	०.९०७	५४.९८
०.९१७	५०.५३	०.९०६	५५.४२
०.९१६	५०.९८	०.९०५	५५.८७
०.९१५	५१.४३	०.९०४	५६.३१
०.९१४	५१.८८	०.९०३	५६.७५
०.९१३	५२.३३	०.९०२	५७.१८
०.९१२	५२.७७	०.९०१	५७.६२
०.९११	५३.२१	०.९००	५८.०६

आसव का छानना

पूर्वोक्त विधि से आसव की पक्वता, अम्लता और मद्यांश आदि की परीक्षा करके शुद्ध आसव को छान कर लकड़ी के ढोलों या चीनी अथवा कांच के उपयुक्त पात्रों में न्यून से न्यून छः मास तक पड़े रहने देना चाहिये। अधिक समय की कोई मर्यादा नहीं क्योंकि आसव जितना अधिक पुराना होगा उतना ही अधिक गुणयुक्त होगा।

आसव को छानते समय इस बात का ध्यान रखना

चाहिये कि वह अधिक देर तक खुला न पड़ा रहे। खुले आसव में से मद्यांश उड़कर कम हो जाता है और वह वायु की ओषजन के योग से सिरका बनने लगता है। छानने के लिए एक तंग मुख का बड़ा पात्र लेकर उस पर कांच की बड़ी पीक लगाएं। इस पीक पर मोटा गाढ़ा कपड़ा या बड़े बड़े छारण पत्र (Filterpaper) लगा कर आसव भर कर ऊपर से ढक दें। आसव धीरे धीरे नीचे के पात्र में आजायगा। पात्र के भर जाने पर उस का मुख काक आदि से मजबूती से बन्द कर दें और मोम या मट्टी लगादें। आसव बनाने के स्थान से रखने का स्थान दूर हो और पात्र बड़ा हो तो प्रथम छोटे पात्र में छान कर उसके मुख को कार्क से बंद करलें फिर उस से दूसरे स्थान में रखे बड़े पात्र में डाल दें। आसव डालने के बाद बड़े पात्र का मुख भी तत्काल बंद कर देना चाहिये।

अनेक वैद्य आसव को सीधे बोतलों में ही छान कर रखते हैं। इसमें एक तो समय अधिक लगता है, आसव के साथ वायु का स्पर्श अधिक काल तक होता है और आसव बनाने के पात्र को भी अनावश्यक रूप से बहुत बार खोलना पड़ता है। दूसरे बोतलों में तलछट बैठता है, जिसे छान कर पुनः दूसरी बोतलों में डालना पड़ता है।

आसव को इस प्रकार छान कर बड़े पात्रों में कुछ मास तक पड़ा रहने देने से अवलंबनस्थ द्रव्य पात्र के तले में बैठ जाते हैं और आसव स्वच्छ हो जाता है। शीशियों में

डालने से पूर्व एक बार और छान लेने से शीशियों के तल में गाद न बैठेगी और आसव चिरकाल तक स्वाभाविक दशा में स्थिर रहेगा।

आसव को बोतलों में डालने के समय उसे छानने के लिए छोटे मुख का ऐसा पात्र लेना चाहिये जिसके तल भाग में टूटी लगी हो। उसके मुख पर कांच की पीक रख कर छारणपत्र लगा देने चाहियें और वक्रा नली द्वारा ढोल आदि बड़े पात्रों में से आसव खींच कर पीक के पार्श्वों पर छोड़ते रहना चाहिये। साथ ही साथ तल भाग में लगी टूटी से पीक द्वारा बोतलें भरने का उपक्रम करें। इस प्रकार आसव स्वच्छ हो जायगा और वायु के स्पर्श से भी बचा रहने के कारण कभी बिगड़ेगा नहीं। भरने से पूर्व बोतलें सोडे के घोल से धोकर और फिर स्वच्छ जल में साफ करके बिलकुल सुखा लेनी चाहियें। इन में आसव डालकर कार्क लगा देना चाहिये। बोतल गीली होगी या खुली रहेगी तो आसव बिगड़ कर सिरका बन जायगा।

जैसा कि पहिले प्रतिपादन कर चुके हैं कि जब तक आसव में २० प्रतिशतक मद्य न हो तब तक मिठास और किण्वकीटाणु की उपस्थिति में संधानक्रिया के पुनः प्रारम्भ होने की संभावना रहती है। परन्तु आसवों में सामान्यतः दस बारह प्रतिशतक मद्यांश होता है जिससे पुनः संधान व्यापार हो सकता है और बोतलों के कार्क उड़ सकते हैं। इसके लिए बोतलों में ढीला कार्क लगा कर उन्हें जल में रख कर लगभग आध घंटा ७०° शतांश पर गरम करना चाहिये।

ऐसा करने से बोतलों के भीतर की कार्बनद्विओषजिद् वायु निकल जायगी तथा इतने तापमान पर किण्वकीटाणु नष्ट हो जाएंगे और पुनः संधान व्यापार चालू होने की संभावना न रहेगी।

आसव और टिंचर

यहां तक हमने विविध ओषधियों के क्वाथ या स्वरस में मधुर द्रव्यों के योग से संधानक्रिया द्वारा आसव बनाने की प्रक्रिया का वर्णन किया। आयुर्वेद में अहिफेनासव, कर्पूरासव, अस्लहरारिष्ट आदि अनेक ऐसे आसव और अरिष्ट हैं जो इस प्रकार मधुर द्रव्यों में संधान उत्पन्न कर के नहीं बनाए जाते; अपितु विविध सुराओं में ओषधियों के चूर्ण या रस मिला कर बन्द पात्र में तीन चार दिन या एक सप्ताह तक रख कर ही तैयार कर लिए जाते हैं। कर्पूर और अनेक द्रव्य जल में घुलनशील नहीं; वे मद्य में सरलता से घुल जाते हैं। अतः जल में न घुलने वाले पदार्थों के आसव यदि बनाने हों तो उनके लिए यही प्रणाली सर्वोत्तम और अनिवार्य है। इसके लिए एक कांच या चीनी मट्टी के पात्र में काष्ठौषधियों का १०–२० तोले सूक्ष्म चूर्ण १ सेर मद्य में डाल कर पांच सात दिन तक धूप में रख कर छारणपत्रों में से छान लेते हैं। पात्र का मुख सर्वथा बन्द रखा जाता है। अहिफेन कर्पूर, कस्तूरी आदि के आसव इस विधि से बनाए गए हैं और उनकी मात्रा योगों में निश्चित कर दी गई है। अन्य द्रव्यों के आसव बनाने में उनकी मात्रा परीक्षणों द्वारा निश्चित की जानी चाहिए।

ऐलोपैथी चिकित्सा प्रणाली में टिंचरों का बड़ा स्थान है। वे

इसी विधि से बनाए जाते हैं। टिंचरों का आविष्कार आयुर्वेद के अहिफेनासव व कर्पूरासव आदि के पीछे हुवा; परन्तु आयुर्वेद में इस दिशा में अधिक प्रगति नहीं हुई।

इसके तीन कारण हैं—

(१) शुद्ध मद्य तैयार करना राजनियम के विरुद्ध है। इसके लिए लाइसेन्स लेना पड़ता है जो कि प्रत्येक वैद्य के लिए संभव नहीं। केवल बड़ी बड़ी निर्माणशालाएं ही लाइसेन्स लेकर शुद्ध मद्य प्राप्त कर सकती हैं।

(२) इनका स्वाद तीक्ष्ण होने से अप्रिय होता है।

(३) भारतवर्ष की जनता की धार्मिक भावना के विपरीत है। अधिकांश नर नारी एलोपैथी की औषधियों का इस लिए भी सेवन नहीं करते कि उन में मद्य का व्यवहार होता है।

इस विधि से बने आसव में कुछ विशेषताएं भी हैं। मद्य में औषधियों के तत्व या सार को ग्रहण करने की शक्ति क्वाथ की अपेक्षा अधिक है। यह थोड़े समय में पांच-सात दिन में-बन जाता है। छानने पर अधिक स्वच्छ होता है और इसके विकृत होने की संभावना बहुत कम होती है। इस की मात्रा भी कुछ बूंदें ही होती हैं।

परन्तु संधानद्वारा आसव बनाने की प्रणाली को छोड़ कर इस प्रणाली को अपनाने से आसवों का प्रयोग बड़ी बड़ी रसशालाओं और चिकित्सकों तक सीमित हो जायगा। साधारण वैद्यों के लिए भी इनको मोल लेने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग खुला न रहेगा। संधानद्वारा बनाने की विधि से कोई व्यक्ति साधारण ज्ञान और परिश्रम से अपनी आवश्यकतानुसार

आसव स्वयं बनाकर या किसी वैद्य से बनवा कर थोड़े ही पैसों में निर्वाह कर सकता है। इस प्रणाली का प्रचार जनता में अधिक हो सकता है और इससे आयुर्वेद को घर घर में व्याप्त एक राष्ट्रीय चिकित्साविज्ञान बनाने में बहुत सफलता मिल सकती है।

संधान के द्वारा बने आसव मधुर और रुचिकर होते हैं: उनकी मात्रा कुछ न्यूनाधिक भी हो जाय तो भी कोई हानि नहीं होती। साधारण व्यक्ति भी इन का प्रयोग कर सकता है। इस लिए हमें संधान द्वारा आसव बनाने की विधि का ही अधिक उपयोग करना चाहिए। इसी के साथ साथ मद्य द्वारा जल में अविलेय द्रव्यों के आसव बनाने और उनका चिकित्सा में प्रयोग करने के परीक्षण करने चाहिए और इस दिशा में भी अभीष्ट प्रगति करने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।

आसव सेवन

हम पहिले बतला चुके हैं कि आसव मद्यजातीय पदार्थ हैं। इनके गुण धर्म भी मद्य के तुल्य हैं। औषध की मात्रा में ये मादक नहीं होते। मद्य में चरक भगवान् ने निम्न लिखित गुण बतलाए हैं—

लघ्वूष्णतीक्ष्णसूक्ष्माम्लव्यवायाशुगमेवच ।
रूक्षविकाशिविशदं मद्यं दशगुणं स्मृतम् ॥

मद्य या आसव में लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवायि, आशुकारि, रूक्ष, विकाशि और विशद ये दस

गुण होते हैं। इन गुणों के कारण आसव साधारणतया दीपक, पाचक, मलशोधक और पौष्टिक होते हैं। सारिवाद्यासव, चन्दनासव, आदि कुछ एक शीत द्रव्यों से बने आसवों के अतिरिक्त प्रायः वात और कफाधिक व्याधियों में ही आसव का प्रयोग अधिक होता है।

पित्तप्रकृति के पुरुषों के लिए आसव का सेवन उतना हितकर नहीं होता। पित्तप्रकृति के पुरुषों के लिए भी कुछ आसव लिखे गए हैं परन्तु उनमें आसव की अपेक्षा शीत और तिक्त ओषधियों का प्रभाव अधिक माना जाता है।

सूक्ष्म, व्यवायि, आशुग, विकाशि और विशद गुणों के कारण ये शीघ्र ही पचकर संपूर्ण शरीर पर अपना प्रभाव दिखलाने में समर्थ होते हैं। नए और पुराने दोनों प्रकार के रोगों में आसव का प्रयोग होता है। नए रोग में मात्रा अधिक और पुराने में कम देनी चाहिए।

आसव अरिष्ट जितने पुराने होते हैं उतने ही अधिक गुणयुक्त होते हैं। नए आसव गुरु और वातकारक होते हैं, पुराने दीपन, लघु, रोचक और स्रोतों के शोधक होते हैं इस लिए शास्त्र कारों ने नए आसव का सेवन निषिद्ध किया है—

प्रायशोऽभिनवं मद्यं गुरुदोषसमीरणम् ।
स्रोतसां शोधनं जीर्णं दीपनं लघु रोचनम् ॥

चरक

नवं मद्यमभिष्यन्दि गुरु वातादि कोपनम् ।
अनिष्टगन्धं विरसमहृद्यं च विदाहि च ॥

गुरु त्रिदोषजननं नवं जीर्णमतोऽन्यथा॥
वाग्भट्ट

इस लिए कम से कम चार-छः मास पुराने आसव का ही व्यवहार करना शास्त्र और व्यवहार सम्मत है, इस से कम समय के नवीन आसव का सेवन नहीं करना चाहिए।

सेवन काल

आसव प्रायः खाली पेट, भूख, विरेचन और उष्णोपचार की अवस्था में नहीं पीने चाहियें; पीने से विदाह होता है। साधारणतया कुछ खाकर आध घंटा पीछे लगभग समान जल मिला कर ही आसव पिए जाते हैं।

मात्रा—आसवों की साधारण मात्रा १ से २ तोले तक है। मद्यसार में बने आसवों की मात्रा १०–२० बूंदों से लेकर १–२ ड्राम तक है।

मान परिभाषा

इस पुस्तक के उत्तरार्ध में हमने आसवों के योगों का मूल पाठ तथा हिन्दी में अनुवाद दिया है। मूलपाठ को समझने के लिए मान परिभाषा का ज्ञान आवश्यक है। आयुर्वेद में कालिङ्ग तथा मागध दो मान मुख्यतया प्रचलित हैं। देश भेद से अन्य भी मान हो सकते हैं। इन सब मानों में रत्ती, सर्षप, धान्य आदि की संख्या व तोल में देश भेद से बहुत अन्तर है। कहीं रत्ती बड़ी हुई तो छः रत्तीका का एक माशा हो गया कहीं छोटी हुई तो बारह रत्ती का। यही दशा रत्ती से छोटे परिमाणों की है। आसवारिष्टों में रत्ती से छोटे परिमाणों की साधारणतया आवश्यकता नहीं है। अतः हम रत्ती से ही प्रारम्भ करके यहां प्राचीन मान देंगे।

वर्तमान में ८ रत्ती का १ माशा, १२ माशे का १ तोला तथा ८० तोले का १ सेर और ४० सेर का १ मन, यह तोल प्रचलित है। मूल पाठ में प्राचीन मान दिया गया है। हम उसको प्रचलित मान में परिवर्त्तित करके अनुवाद में दिखलाएंगें ताकि योगों को सरलता से समझ सकें।

रत्ती और माशे के मान में भी भेद है, परन्तु हमने ६ रत्ती का १ माशा यह पक्ष स्वीकार करके संगति की है। प्राचीन परिभाषा के अनुसार ६ रत्ती = १ माशा; ४ माशा = १ शाण, इसप्रकार २४ रत्ती का शाण बनता है। ८ रत्ती का माशा और ३ माशे का शाण मान लेने से भी २४ रत्ती का शाण होगा और आगे पूर्ववत् ४८ रत्ती का कोल और ९६ रत्ती का १ कर्ष अर्थात् वर्त्तमान तोला बनेगा। इस प्रकार माशे और शाण में थोड़ा सा परिवर्त्तन कर लेने से प्रचलित मानों के साथ सामञ्जस्य होजाता है।

इसी प्रकार ४ कर्ष या तोले की अपेक्षा ५ कर्ष का १ पल मान लेने से प्रस्थ का मान आधुनिक ८० तोले के सेर के तुल्य होजायगा। प्राचीन मानों में यह सामान्य परिवर्तन करके आधुनिक तोलों के साथ एकरूपता होजाने मे बहुत सुविधा हो सकती है। आशा है कि विद्वान् लोग इस पर विचार करेंगें।

आयुर्वेदोक्त मान

६ रत्ती = १ माशा	अथवा	८ रत्ती = १ माशा
४ माशा = १ शाण, धरण टंक		३ माशा = १ शाण

२ शाण = १ कोल, बदर, द्रक्षण, क्षुद्रक, वटक, गद्याण।
२ कोल = १ कर्ष (१ तोला) पिचु, पाणिमाणिका, अक्ष, तिन्दुक, सुवर्ण, विडालपदक।

२ कर्ष (२ तोला)	= ½ पल, शुक्ति।
४ कर्ष (४ तोला)	= १ पल, मुष्टि, बिल्व, आम्र, षोडशी।
२ पल	= १ प्रसृति या ८ तोला।
२ प्रसृति	= १ कुडव या १६ तोले।
२ कुडव	= १ मानिका, शराब या ३२ तोले।
२ शराव	= १ प्रस्थ या ६४ तोले = १२ छटांक ४ तोले।
४ प्रस्थ	= १ आढक, पात्र, भाजन = ३ सेर, ३ छटांक १ तोला।
४ आढक	= १ द्रोण, कलश, (१०२४ तोले) = १२ सेर १२ छटांक, ४ तोले।
४ द्रोण	= १ द्रोणी (४०९६ तोले) = १ मन ११ सेर ३ छटांक १ तोला।
१०० पल	= १ तुला अर्थात् प्रचलित ५ सेर।
२००० पल	= १ भार, २ मन २० सेर।

आसव-अरिष्ट

उत्तरार्ध

उत्तरार्द्ध में दिये जाने वाले योगों का क्रम इस प्रकार है—

[i] संधान विधि से बने आसव।

[ii] सीधे मद्य से बने आसव।

[iii] अन्त में वे आसव जिन में कि मधुर द्रव्य मिला कर आसव-संधान तो नहीं किया जाता, परन्तु आसवों के समान एक नियत अवधि तक भूमि या जौ आदि के भूसे में रखे जाते हैं।

ज्वराधिकार

अमृतारिष्ट

[आयुर्वेद संग्रह, भैषज्य रत्नावली]

अमृतायाः पलशतं दशमूलीशतं तथा ।
चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा कुर्यात् पादावशेषितम् ॥
शीते तस्मिन् रसे पूते गुडस्य त्रितुलाः क्षिपेत् ।
अजाजी षोडशपलं पर्पटस्य पलद्वयम् ॥
सप्तपर्णं त्रिकटुकं मुस्तकं नागकेसरम् ।
कटुकातिविषे चेन्द्रयवञ्च पल सम्मितम् ॥
एकीकृत्य क्षिपेत् भाण्डे निदध्यान्मासमात्रकम् ।
अमृतारिष्ट इत्येष सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥

क्वाथ्य द्रव्य— गिलोय ५ सेर, दशमूल मिलित ५ सेर ॥
क्वाथ्य जल— १ मन १२ सेर । शेष- १३ सेर ।
मधुर द्रव्य— गुड़ १५ सेर ।

प्रक्षेप द्रव्य— कालाजीरा ६४ तोले, पित्तपापड़ा ८ तोले, सप्तपर्ण, त्रिकटु मिलित, नागरमोथा, नागकेसर, कुटकी, इन्द्रजौं, और अतीस प्रत्येक ४ तोले । सन्धानावधि— एक मास ।

उपयोग— विषमज्वर, जीर्णज्वर, मन्दसूक्ष्मज्वर, और यकृत् प्लीहा की वृद्धि सहित ज्वर में इसके सेवन से विशेष लाभ होता है । मात्रा- २ तोले ।

विशेष द्रष्टव्य— द्रवद्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार जल द्विगुण लें। प्रारंभ में गुड़ ५ सेर डालें; आसव में मीठा न रहने पर पांच पांच सेर गुड़ दो वार करके और डालें। किण्व १ सेर मिलाएं।

कुब्जकासव

(गदनिग्रह)

शतं कुब्जकमूलस्य मृद्वीकार्धशतं तथा।
मधूकपुष्प काश्मर्य भागान् दशपलोन्मितान्॥
चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा शीते पादावशेषिते।
धातक्या विंशतिपलं गुडस्य च शतत्रयम्॥
कनकस्य तु चत्वारि व्योषं कङ्कोलमेव च।
एला त्वक्पत्रजातीनां लवङ्गस्य तथैवच॥
भागाः पलप्रमाणाश्च सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत्।
कौब्जमूलासवो ह्येष मासमात्रं विधारितः॥
शमयेत् सन्निपातोत्थान् ज्वरान् सर्वान् न संशयः।

क्वाथ्य द्रव्य—गुलाब की जड़ या फूल ५ सेर, मुनक्का २॥ सेर, महुए के फूल और गंभारी प्रत्येक आध सेर।

क्वाथ्य जल—१ मन, १२ सेर। शेष—१३ सेर।

मधुर द्रव्य—गुड़ १५ सेर।

प्रक्षेपद्रव्य—धतूरे के शोधित बीज १६ तोले, पिप्पली सोंठ, मरिच, शीतल चीनी, छोटी इलायची, दाल चीनी, तेजपत्र, जावित्री और लौंग प्रत्येक ४ तोले। संधानावधि—१ मास।

उपयोग—यह कोष्ठशोधक, ज्वरशामक तथा हृदय-

प्रसादक है । ज्वर की ऊष्मा को कम करता है और ज्वर सह या स्वतंत्र कास श्वास की शांति करता है। धत्तूरबीजों के कारण वेदना तथा प्रलाप को शान्त करने का गुण भी इसमें लक्षित होता है। मात्रा—२ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें। प्रथम ५ सेर गुड़ डालें। मिठास न रहने पर पांच पांच सेर गुड़ दो बार में फिर डालना चाहिये। सुराबीज १ सेर डालें।

धान्यकाद्यरिष्ट

(गद निग्रह)

धान्यकोशीरमुस्तानां पलमेकत्र कारयेत्।
द्विपलं पद्मकं कुष्ठं कुर्यान्निम्बं तदर्धकम्॥
सर्वांशेन ततो दद्याच्छिन्नाङ्गां च फलत्रिकम्।
जलद्रोणद्वयं दत्त्वा षोडशांशेन संहरेत्॥
पलं दार्व्यास्ततस्तस्मिन् शीतपूते भिषग्वरः।
मधुनः षोडशपलं दत्त्वा सर्वं विमन्थयेत्॥
स्थापयेद् घृतभाण्डे तु मासादूर्ध्वं प्रयोजयेत्।
धान्यकादिररिष्टोऽयं सर्वज्वरविनाशनः॥

काथ्यद्रव्य—धनियां, खस, नागरमोथा, नीमकी छाल प्रत्येक ४ तोले, पद्माक, कुष्ठ दोनों ८–८ तोले, गिलोय ३२ तोले, और त्रिफला ३२ तोले।

काथ्यजल—२६ सेर, शेष—१ सेर, १० छटांक।

मधुर द्रव्य—मधु ६४ तोले।

प्रक्षेप द्रव्य—दारुहलदी ४ तोले।

संधानावधि—१ मास।

उपयोग—यह तिक्तरस और शीतवीर्य है। दाहयुक्त पित्तज्वर और सूक्ष्म विषमज्वर में लाभदायक है। मात्रा १। से २॥ तोले।

विशेषद्रष्टव्य—षोडशांश क्वाथ करने की आवश्यकता नहीं, चतुर्थांश पर्याप्त है। इसके अनुसार ६ सेर ६ छटांक क्वाथ में १। सेर मधु मिलाएं, संधान प्रारम्भ होने पर मिठास कम हो जाय तो इतना ही मधु और मिलादें। किण्व आध सेर और धातकी-पुष्प ८ तोले डालें।

लोहासव

(शार्ङ्गधर संहिता, भैषज्य रत्नावली)

लौहचूर्णं त्रिकटुकं त्रिफलञ्च यमानिका।
विडङ्गं मुस्तकं चित्रं चतुः संख्यापलं क्षिपेत्॥
धातकीकुसुमानां तु प्रक्षिपेत् पलविंशतिम्।
चूर्णीकृत्य ततः क्षौद्रं चतुःषष्टिपलं पृथक्॥
दद्यात् गुडतुलां तत्र जलद्रोणद्वयं तथा।
घृतभाण्डे विनिक्षिप्य निदध्यान्मासमात्रकम्॥
लौहासवममुं मर्त्यः पिबेद् वन्हिकरं परम्।
पाण्डुश्वयथुगुल्मानि जठराण्यर्शसां रुजम्॥
प्लीहामयं ज्वरं जीर्णं कासं श्वासं भगन्दरम्।
अरोचकं च ग्रहणीं हृद्रोगञ्च विनाशयेत्॥

औषधद्रव्य— लौहभस्म, त्रिकटु, त्रिफला, अजवायन, विडङ्ग, नागरमोथा, चित्रक प्रत्येक १६ तोले, धातकीपुष्प

१ सेर।

जल—२६ सेर।

मधुर द्रव्य—मधु ३ सेर १६ तोले; गुड़ ५ सेर।

संधानावधि—एक मास।

उपयोग—यह आसव पाचक, दीपक तथा रक्तवर्धक है। विषमज्वर में रक्त के लालकणों का अतिमात्रा में नाश होता है जिससे पाण्डु तथा हृदय रोग की उत्पत्ति होती है। रक्तसंचार के शिथिल हो जाने से शोथ हो जाता है। प्लीहावृद्धि विषमज्वर से होती है और प्लीहा बढ़ जाने पर विषमज्वर के आक्रमण होते रहते हैं। लोहासव इन सब विकारों में श्रेष्ठ है। परन्तु यदि मलबन्ध रहता हो और यकृत् से पित्त का स्राव उचित मात्रा में न होता हो तो इसके सेवन से अर्श की उत्पत्ति हो सकती है। मात्रा—१ से २ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—पहिले ५ सेर गुड़ मिला कर संधान करें. घोल में मिठास कम हो जाने पर मधु मिलाएं। आसव पक्व हो जाय तो छान कर ५ सेर गुड़ और मिला देने से आसव सुरक्षित रहेगा। लोह चूर्ण या भस्म को पूर्वार्ध में प्रतिपादित विधि के अनुसार त्रिफलाचूर्ण और पानी के घोल में तीन चार दिन रखकर आसव में मिलाएं। किण्व १ सेर डालें।

अतिसाराधिकार

कुटजारिष्ट

[शाङ्र्गधर संहिता, भैषज्य रत्नावली]

तुलां कुटजमूलस्य मृद्वीकार्धतुलां तथा ।
मधूकपुष्पकाश्मर्यो र्भागान दशपलोन्मितान् ॥
चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणञ्चैवावशेषितम् ।
धातक्या विंशतिपलं गुडस्य च तुलां क्षिपेत् ॥
मासमात्रं स्थितो भाण्डे कुटजारिष्टसंज्ञितः ।
ज्वरान् प्रशमयेत् सर्वान् कुर्यात् तीक्ष्णं धनञ्जयम् ॥
दुर्धरां ग्रहणीं हन्ति रक्तातीसारमुल्बणाम् ॥

काथ्य द्रव्य— कूड़े की छाल ५ सेर, मुनक्का २॥ सेर, महुए के फूल तथा गंभारी की छाल प्रत्येक आध सेर।

काथ्य जल—१ मन १२ सेर। शेष—१३ सेर।

मधुर द्रव्य—गुड ५ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—धातकी पुष्प १ सेर।

संधानावधि—१ मास।

प्रयोग—यह अरिष्ट अग्निदीपक और ग्राहि है। अग्निमांद्य, अतिसार, रक्तातिसार, ग्रहणी, रक्तार्श तथा विविध ज्वरों में लाभदायक है। मात्रा-१ से २ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—गुड़ आधा आधा करके दो बार डालें। किण्व आधा सेर मिलाएं।

ग्रहण्यधिकार

अभयारिष्ट

[गद निग्रह]

हरितकीदलप्रस्थं प्रस्थमामलकस्य च ।
विशालायाः कपित्थस्य पाठाचित्रकमूलयोः ॥
द्वे द्वे पले समापोथ्य द्विद्रोणे साधयेदपाम् ।
पादशेषे च पूते च रसे तस्मिन् प्रदापयेत् ॥
गुडस्यैकां तुलां वैद्यः संस्थाप्य घृतभाजने ।
पक्षस्थित भजेन्नित्यं ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥
प्लीहहृत्पाण्डुरोगघ्नः कामलाविषमज्वरान् ।
कासं श्वासमुदावर्तं फलारिष्टो व्यपोहति ॥

क्वाथ्य द्रव्य— बड़ी हरड़ ६४ तोले, आमला ६४ तोले, इन्द्रायणमूल, कैथ का फल, पाठा, चित्रकमूल प्रत्येक ८ तोले ।

क्वाथ्य जल— २६ सेर । शेष—६ सेर ८ छटांक ।

मधुर द्रव्य—गुड़ ५ सेर ।

प्रक्षेप द्रव्य— संधानावधि-एक पक्ष ।

उपयोग—ग्रहणी, अर्श, प्लीहा, हृद्रोग, पाण्डु, कामला, और विषमज्वर में इस का व्यवहार करना चाहिये । मात्रा-२ तोले ।

विशेष द्रव्य—जल की मात्रा द्विगुण करें। अन्यथा घोल के अत्यधिक सान्द्र होने के कारण संधान न उठेगा। गुड़ आधा आधा करके दो बार में डालें। धातकी पुष्प १६ तोले और सुराबीज आध सेर डालें।

दुरालभारिष्ट

[चरक संहिता, गद निग्रह]

दुरालभाया द्विप्रस्थं प्रस्थमामलकस्य च ।
मुष्टी चित्रक दन्त्योर्द्वे प्रत्यग्रं चाभयाशतम् ॥
चतुर्द्रोणेऽम्भसः काथ्य शीतं द्रोणावशेषितम् ।
गुडस्य द्विशतं पूतं मधुनः कुडवान्वितम् ॥
तद्वत् प्रियङ्गोः पिप्पल्या विडङ्गानां च चूर्णकम् ।
कुडवं घृतकुम्भस्थ पक्षादूर्ध्वं पिबेन्नरः ॥
ग्रहणी पाण्डुरोगार्शः कुष्ठवीसर्प मेहनुत् ।
स्वरवर्णकरश्चैव रक्तपित्तकफापहः ॥

काथ्य द्रव्य—धमासा १ सेर ० छटांक २ तोले, आमला ६४ तोले, चित्रक और दन्तीमूल ८-८ तोले; उत्तम नवीन बड़ी हरड़ एक सौ।

काथ्य जल—१ मन १२ सेर। शेष—१३ सेर।

मधुर द्रव्य—गुड़ १० सेर, मधु १६ तोले।

प्रक्षेप द्रव्य—प्रियङ्गु, पिप्पली, विडङ्ग प्रत्येक १६ तोले।

संधानाविधि—पन्द्रह दिन।

उपयोग—यह श्लेष्म दोषनाशक है। इसका मुख्य प्रयोग ग्रहणी और अर्श रोग में है। पाण्डु, कुष्ठ, वीसर्प और प्रमेह में भी यह लाभदायक है। मात्रा—१। से २॥ तोले।

विशेष द्रव्य – चरक में इसे दुरालभासव नाम दिया है। जल द्विगुण करें; गुड़ आधा आधा करके दो बार में डालें। ग्रन्थ में पाठ न होने पर भी धातकी पुष्प १६ तोले तथा सुराबीज १ सेर डालें।

द्राक्षासव

[गदनिग्रह, योगरत्नाकर, शार्ङ्गधरसंहिता]

मृद्वीकायाः पलशतं चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ।
द्रोणशेषे तु शीते च पूते तस्मिन् प्रदापयेत् ॥
द्विशते चौद्र खण्डाभ्यां धातक्याः प्रस्थमेव च ।
कंकोलक लवंगे च जातीफलमथैव च ॥
पलांशकानि मरिचं त्वगेलापत्रकेशरम् ।
पिप्पली चित्रकं चव्यं पिप्पलीमूलरेणुकम् ॥
घृतभाण्ड स्थितमिदं चन्दनागुरु धूपितम् ।
कर्पूरवासितो ह्येष ग्रहणीदीपनः परम् ॥
अर्शसां नाशनः श्रेष्ठ उदावर्तास्रगुल्मनुत् ।
जठर क्रिमि कुष्ठानि व्रणांश्च विविधांस्तथा ॥
अक्षिरोग शिरोरोग गलरोग विनाशनः ।
ज्वरमांमं महाव्याधिं पाण्डुरोगं सकामलम् ॥
नाम्ना द्राक्षासवो ह्येष बृंहणो बलवर्णकृत् ॥

क्वाथ्य द्रव्य—मुनक्का काली ५ सेर।

क्वाथ्य जल—जल १ मन १२ सेर। शेष – १३ सेर।

मधुर द्रव्य – खांड ५ सेर, शहद ५ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल ६४ तोले, ककोल, लौंग, जाय॰

फल, मरिच, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेसर, पिप्पली, चित्रक, चव्य, पिप्पलीमूल, और संभालू के बीज प्रत्येक ४ तोले। संधानावधि— एक मास।

उपयोग— द्राक्षासव अग्नि दीपक है, और वायु का अनुलोमन तथा कोष्ठ की शुद्धि करता है। यह अर्श, ग्रहणी, उदावर्त, रक्तगुल्म, उदर रोग, उदर कृमि, कुष्ठ, विविध व्रण, एवं नेत्र सिर तथा गले के रोगों को नष्ट करता है। इसमें बृंहण गुण भी विशेष है, जिस से बल तथा मांस की वृद्धि कर शरीरको सुन्दर और कांतिमान बनाता है। इसके सेवन से अरुचि, आलस्य और थकावट नहीं होती, कार्य में उत्साह होता है और मन प्रसन्न रहता है।

विशेष द्रष्टव्य—शार्ङ्गधर संहिता में इसे मृद्वीकारिष्ट नाम दिया है। कहीं कहीं 'जातिफल' के स्थान पर 'जाति सस्यम्' ऐसा अशुद्ध पाठ है।

इसके निर्माण में जल द्विगुण लें। खाण्ड तथा शहद एक साथ न डाल कर आधी आधी मात्रा में दो बार करके डालें। सुराबीज १ सेर मिलाएं।

पिण्डासव

[चरक संहिता]

प्रास्थिकीं पिप्पलीं पिष्ट्वा गुडं मध्यं विभीतकान्।
उदकप्रस्थसंयुक्तं यव पल्ले निधापयेत् ॥
तस्मात् पलं सुजातात्तु सलिलाञ्जलि संयुतम्।
पिबेत् पिण्डासवो ह्येष रोगानीकविनाशनः ॥
स्वस्थोऽप्येन पिबेन्मासं नरः सिद्धं रसायनम्।
इच्छंस्तेषामनुत्पत्तिं रोगाणां ये प्रकीर्तिताः ॥

औषधद्रव्य—पिप्पली १६ तोले; बहेड़े की गिरी १३ तोले।

जल—६४ तोले ।

गुड़—१६ तोले।

सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग—यह अग्निमांद्य, कास और श्वास नाशक उत्तम रसायन है। स्वस्थ अवस्था में इसे एक मास तक पीने से अनेक रोगों से बचाव होता है। इसकी मात्रा ४ तोले लिखी है जो कि आजकल अधिक है। १ से २ तोला तक ५ तोले जल में मिलाकर पीना चाहिए ।

विशेष द्रष्टव्य—अन्य आसवों की तरह यह पतला द्रव न होकर गाढा कल्क सा होता है। बनाने के लिए जौं की कोठी में रखें। पिप्पली और बहेड़े का सूक्ष्म चूर्ण कर लेना चाहिए।

मूलासव

[चरक संहिता, गद निग्रह]

द्विपञ्चमूलरजनी जीवकर्षभजीरकम् ।
पृथक् पञ्च पलै र्भागै श्चतुर्द्रोणेऽम्भसःपचेत् ॥
द्रोणशेषे रसे पूते गुडस्य द्विशतं तथा ।
चूर्णितान् कुडवार्धांशान् दत्वा चात्र समाक्षिकान् ॥
प्रियङ्गुमुस्त मंजिष्ठा विडङ्ग मधुक प्लवान् ।
रोध्रं सावरकं चैव मासार्धं स्थापयेद् भृशम् ॥
एष मूलासवः सिद्धो दीपनो रक्तपित्तहा ।
आमहृत् कफहृद्रोग पाण्डुरोगाङ्गसादनुत् ॥

क्वाथ्य द्रव्य—दशमूल, हल्दी, जीवक, ऋषभक, काला

जीरा, प्रत्येक २० तोले।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर। शेष—१३ सेर।

मधुरद्रव्य—गुड़ १० सेर, मधु ८ तोले।

प्रक्षेप द्रव्य—प्रियंगु, नागरमोथा, मजीठ, विडङ्ग, मुलहठी, भद्रमोथा, और पठानी लोध्र प्रत्येक ८ तोले। संधानावधि—पन्द्रह दिन।

उपयोग—यह आसव अग्निदीपक, तथा आम पाचक है और कफ दोष, हृद्रोग तथा पाण्डुरोग नाशक है। मात्रा १।-२॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें। गुड़ आधा आधा करके दो बार मिलाएं। किण्व १ सेर तथा धातकीपुष्प १६ तोले डालें। जीवक और ऋषभक के अभाव में क्रमशः विदारीकन्द और वराहीकन्द मिलाएं।

मध्वरिष्ट

(चरक संहिता)

नवे पिप्पलीमध्वाक्ते कलसेऽगुरु धूपिते ।
मध्वाढक जलसमं चूर्णानीमानि दापयेत् ॥
कुडवार्धं विडङ्गानां पिप्पल्याः कुडवं तथा ।
चतुर्थकांशान् त्वक्क्षीर्याः केशरं मरिचानि च ॥
त्वगेलापत्रक शटी क्रमुकातिविषा घनम् ।
हरेण्वेलुक तेजोह्वा पिप्पलीमूल चित्रकान् ॥
कार्षिकांस्तान् स्थितं मासमत ऊर्ध्वं प्रयोजयेत् ।
मन्दं सन्दीपयत्यग्निं करोति विषमं समम् ॥
हृत्पाण्डुग्रहणी रोग कुष्ठार्शः श्वयथु ज्वरान् ।
वातश्लेष्मामयांश्चान्यान्मध्वरिष्टो व्यपोहति ॥

औषध द्रव्य—विडङ्ग ८ तोले, पिप्पली १६ तोले, वंशलोचन, नागकेसर, मरिच प्रत्येक ४ तोले दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, कचूर, सुपारी, अतीस, नागर मोथा, संभालू के बीज, एलबालुक, तेजवल, पिप्पलीमूल, और चित्रकमूल प्रत्येक १ तोला ।

जल—३ सेर ४ छटांक ।

मधुर द्रव्य—मधु ३ सेर ४ छटांक । संधानावधि—एक मास ।
उपयोग—यह अरिष्ट मन्द अग्नि को दीप्त एवं विषम

अग्नि को सम करके ग्रहणी, हृद्रोग, पाण्डुरोग, और विविध ज्वरों तथा वात एवं कफजन्य व्याधियों को दूर करता है।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें। मधु आधा पहिले मिलादें: शेष संधानावस्था में मिठास कम हो जाने पर मिलाएं। सुराबीज १ पाव डालें। एलवालुक काली मिरच जैसा एक सुगन्धित पदार्थ है, अभाव में शीतल चीनी का प्रयोग होता है।

मध्वासव

(चरक संहिता, अष्टाङ्ग हृदय)

मधूकपुष्पस्वरसं शृतमर्धक्षयीकृतम् ।
क्षौद्रं पादयुतं शीतं पूर्ववत् सन्निधापयेत् ॥
तं पिबन् ग्रहणीदोषान् जयेत् सर्वान् हिताशनः ।

क्वाथ्य द्रव्य—महुए के फूलों का रस १० सेर।
शेष—५ सेर।
मधुर द्रव्य—मधु १। सेर। संधानावधि—एक मास।
उपयोग—अग्नि को प्रदीप्त कर विविध ग्रहणी विकारों को दूर करता है।

विशेष द्रष्टव्य मृत्पात्र में बनाना हो तो इलायची, खस, अगर और चन्दन का पात्र के भीतर लेप करना चाहिये। अन्य पात्रों में इन्हें प्रक्षेप रूप से डालें। महुए के फूलों में स्वभावता किण्वकीटाणु प्रचुर मात्रा में रहते हैं, अतः धातकीपुष्प या सुराबीज डालने की आवश्यकता नहीं।

मध्वासव

(चरक संहिता: अष्टाङ्ग हृदय)

द्रोणं मधूकपुष्पाणां विडङ्गानां ततोऽर्धतः ।
चित्रकस्य ततोऽर्धं स्यात् तथा भल्लातकाढकम् ॥
मंजिष्ठा त्रिपलं चैव द्विद्रोणेऽपां विपाचयेत् ।
द्रोणशेषे तु तच्छीतं मध्वर्धाढकसंयुतम् ॥
एला मृणालागुरुभिश्चन्दनेन च रूषिते ।
कुम्भे मासस्थितं जातमासवं तं प्रयोजयेत् ॥
ग्रहणीं दीपयत्येष बृंहणः कफपित्तजित् ।
शोथं कुष्ठं किलासंच प्रमेहांश्च प्रणाशयेत् ॥

क्वाथ्य द्रव्य—महुए के फूल १३ सेर, वायविडङ्ग ६ सेर-८ छटांक, चित्रक ३ सेर ४ छटांक. शुद्ध भिलावे ३ सेर-४ छटांक, मजीठ १२ तोले ।

क्वाथ्य जल--२६ सेर ८ छटांक । शेष-१३ सेर, ४ छटांक ।

मधुर द्रव्य--१ सेर १० छटांक ।

संधानावधि—एक मास ।

उपयोग-इस में चित्रक तथा भल्लातक दो मुख्य और विशेष ओषधियां हैं । ये कफनाशक और अग्निदीपक हैं । अतः

यह आसव श्लेष्मग्रहणी में या कफ प्रकृति के रोगियों के लिए अधिक लाभदायक है। चित्रक और भल्लातक के कारण विविध कुष्ट रोगों में भी उपयोगी है। भल्लातक सब को सह्य नहीं होता अतः प्रकृति का विचार करके ही इस आसव का प्रयोग करना चाहिये। मात्रा – १। तोला तक।

विशेष द्रष्टव्य--इस में मधुर द्रव्यों का परिमाण न्यून है। इस लिए मधु द्विगुण लें। किण्व आध सेर तथा धातकीपुष्प ८ तोले डालें। मृत्पात्र में इलायची, खस, अगर: और चन्दन का लेप करना चाहिए: अन्य पात्रों में ६ छटांक की मात्रा में प्रक्षेप रूप से डालें।

अर्शोऽधिकार

अभयारिष्ट

(सुश्रुतसंहिता, चरकसंहिता, गदनिग्रह, अष्टाङ्गहृदय)

हरीतकीनां प्रस्थार्धं प्रस्थ मामलकस्य च ।
स्यात् कपित्थाद् दशपलं ततोऽर्धा चेन्द्र वारुणी ॥
विडङ्ग पिप्पली लोध्रं मरिचं सैलवालुकम् ।
द्विपलांशं जलस्यैत च्चतुर्द्रोणे विपाचयेत् ॥
द्रोणशेषे रसे तस्मिन् पूते शीते समावपेत् ।
गुडस्य द्विशतं तिष्ठेत्तत्पक्षं घृतभाजने ॥
पक्षादूर्ध्वं भवेत् पेया ततो मात्रा यथाबलम् ।
अस्याभ्यासा दरिष्टस्य नश्यन्ति गुदजा अपि ॥
ग्रहणी पाण्डुहृद्रोग प्लीहा गुल्मोदरापहः ।
कुष्ठशोफारुचिहरो बल वर्णाग्नि वर्धनः ॥
सिद्धोऽयमभयारिष्टः कामला श्वित्रनाशनः ।
कृमिग्रन्थ्यर्बुदव्यङ्ग राजयक्ष्म ज्वरान्तकृत् ॥

क्वाथ्य द्रव्य—बड़ी हरड़ ३२ तोले, आंवला ६४ तोले, कैथ का पका फल ४० तोले, इन्द्रायण फल २० तोले।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर। शेष—१३ सेर।

मधुर द्रव्य—गुड़ १० सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—विडङ्ग, पिप्पली, लोध, मरिच, एलवालुक,

प्रत्येक ८ तोले। संधानावधि—पन्द्रह दिन।

उपयोग—इस आसव का प्रयोग ग्रहणी, बवासीर, पाण्डु कामला, हृद्रोग, प्लीहा, गुल्म और अरुचि आदि रोगों में किया जाता है। मात्रा १। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—जल की मात्रा द्विगुण करें। ५ सेर गुड़ प्रारम्भ में डालें, उसके आसव में परिणत हो जाने पर शेष ५ सेर भी मिलादें। संधान के लिए धातकीपुष्प १६ तोले और किण्व १ सेर डालें॥

अभयारिष्ट

(भैषज्य रत्नावली)

अभयायास्तुलामेकां मृद्वीकार्धतुलां तथा।
विडङ्गस्य दशपलं मधूककुसुमस्य च॥
चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा द्रोणमेकञ्च शेषयेत्।
शीतीभूते रसे तस्मिन् पूते गुडतुलां क्षिपेत्॥
श्वदंष्ट्रां त्रिवृतां धान्यं धातकीमिन्द्रवारुणीम्।
चव्यं मधूरिकां शुण्ठीं दन्तीं मोचरसं तथा॥
पलयुग्ममितं सर्वं पात्रे महति मृण्मये।
क्षिप्त्वा संरुध्य तत् पात्रं मासमात्रं निधापयेत्॥
ततो ज्ञातरसञ्ज्ञात्वा परिस्राव्य रसं नयेत्।
बलं कोष्ठञ्च वन्हिञ्च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत्॥
अर्शांसि नाशयेच्छीघ्रं तथा प्टावुदराणि च।
वर्चोमूत्र विबन्धघ्नो वन्हिसंदीपनः परः॥

काथ्य द्रव्य—बड़ी उत्तम हरड़ ५ सेर, काली मुनक्का २॥ सेर, वायविडंग, और महुवे के फूल प्रत्येक आध सेर।

काथ्य जल—१ मन १२ सेर। शेष—१३ सेर।

मधुर द्रव्य—गुड़ ५ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—गोखरु, त्रिवृत्, धनियां, धावे के फूल इन्द्रायण, चव्य, सौंफ, सोंठ, दन्तीमूल, और मोचरस प्रत्येक ८ तोले। सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग—यह अरिष्ट उत्तम अग्निदीपक, सारक, और मूत्रल है। अन्त्र और यकृत् की क्रिया शक्ति को बढ़ाता है। वातार्श, रक्तार्श तथा विविध उदरविकारों में अत्यन्त हितकर है। अभयारिष्ट के सेवनकाल में थोड़ा घृत सेवन करना लाभदायक है। मात्रा १। से २।। तोला, गरम या ठण्डे पानी में मिला कर दें।

विशेष द्रष्टव्य—घोल में गुड़ २॥ सेर मिलाएं; सन्धान के मध्य में मिठास कम हो जाने पर २॥ सेर गुड़ दुबारा मिलाएं। किण्व आध सेर डालें।

*

कनकारिष्ट

(चरक संहिता, गद निग्रह)

नवस्यामलकस्यैकां कुर्याज्जर्जरितां तुलाम् ।
कुडवांशश्च मागध्या विडङ्ग मरिचानि च ॥
यवासः पिप्पलीमूलं क्रमुकं चव्यचित्रकौ ।
मंजिष्ठैल्वालुकं रोध्रं पलिकान्युपकल्पयेत् ॥
कुष्ठं दारुहरिद्रां च सुराह्वं सारिवाद्वयम् ।
मुस्तमिन्द्रयवां श्चैव कुर्यादधपलान्मितान् ॥
चत्वारि नागपुष्पस्य पलान्यभिनवस्य च ।
जलद्रोण द्वयेनैतत्साधयित्वाऽवतारयेत् ॥
द्रोणावशेषे पूते च शीते तस्मिन् प्रदापयेत् ।
मृद्वीकाद्वयाढकरसं शीतं निर्यूहसाधितम् ॥
शर्करायाश्च शुद्धाया दद्याद् द्विगुणितां तुलाम् ।
कुसुमस्वरस्यैक मर्धं प्रस्थं नवस्य च ॥
त्वगेला लव पत्राम्बु सेव्यक्रमुक केसरान् ।
सचूर्णयित्वा मतिमान् कार्षिकान् संप्रदापयेत् ॥
तत्सर्वं स्थापयेत् पक्षं सुचौक्षे घृतभाजने ।
प्रलिप्ते सर्पिषा किंचिच्छर्करागुरुधूपिते ॥
पक्षादूर्ध्वमरिष्टोऽयं कनको नाम विश्रुतः ।
पेयः स्वादुरसो; हृद्यः प्रयोगाद् भक्तरोचकः ॥
अर्शांसि ग्रहणीरोगमानाहमुदरं ज्वरम् ।

हृत्पाण्डुरोगश्वयथु गुल्मवर्चोऽनिलग्रहान् ॥
कासान् कफामयांश्चोग्रान्सर्वानेवापकर्षति ।
बली पलित खालित्यं दोषजं तु व्यपोहति ॥

क्वाथ्य द्रव्य—नए-हरे कुटे हुए आमले ५ सेर, पिप्पली १६ तोले; विडङ्ग, मरिच, धमासा, पिप्पलीमूल, सुपारी, चव्य, चित्रक, मजीठ, एलवालुक, लोध, प्रत्येक ४ तोले; कूठ, दारुहल्दी देवदारु, दोनों सारिवा, नागर मोथा, इन्द्रजौ प्रत्येक २ तोले; और नागकेसर १६ तोले ।

क्वाथ्य जल—२६ सेर । शेष—१३ सेर ।

(२) मुनक्का—६ सेर ८ छटांक ।

जल—२६ सेर । शेष—६ सेर ८ छटांक ।

मधुर द्रव्य—चीनी १० सेर; मधु १ सेर ४ छटांक ।

प्रक्षेप द्रव्य—दालचीनी, छोटी इलायची, नागरमोथा, तेजपत्र, सुगन्धबाला, खस, सुपारी, नागकेसर, प्रत्येक १ तोला ।

संधानावधि—पन्द्रह दिन ।

उपयोग—यह आसव वातानुबन्धि पित्त का शमन करता है । वायु का अनुलोमन कर मल मूत्र की शुद्धि करता है । पैत्तिक अर्श, ग्रहणी, हृद्रोग, पाण्डु, शोथ, गुल्म तथा कास रोग में उपयोगी है । इन ही दोषों के कारण शरीर पर बलियां (झुर्रियां) पड़ गई हों या वृद्धावस्था से पूर्व ही बाल पक कर सफेद हो गए हों तो इस आसव का सेवन लाभदायक है । यह उत्तम वयः स्थापक रसायन है । मात्रा १। से २॥ तोला तक ।

विशेष द्रष्टव्य—इस में चीनी की मात्रा अधिक है । इस

लिए दो या तीन बार में विभक्त कर के डालें। धातकीपुष्प १६ तोले तथा किण्व तीन पाव प्रक्षेप के साथ ही मिला दें।

ताम्बूलासव

(गद निग्रह)

जतुलिप्तं ननु कृत्वा भाण्डक मधप्रवेशितं भूमौ।
तत्तरुणहरितजम्बू पत्र क्वाथेन संशुद्धम् ॥
शुद्धे च शर्कराभिरगुरुं दद्यात् सुगन्धतरम्।
वासार्थं धातक्याः पलानि खलु सप्त देयानि ॥
पूगीफलानि खदिरं दशपलिकानि दापयेत्तत्र।
ताम्बूलीपत्रशतैः दशभिः चूर्णैश्च पञ्चभिश्चान्यैः ॥
पलशतमेक मधुनः शतं च सार्धं तु वारिणा देयम्।
कक्कोलक कृष्णानां प्रत्येक द्वे पले च स्युः।
त्रिफला जातीफलैला लवङ्गकुसुमानि चैकपलिकानि ॥
दत्वा कलांड्यमेतत् त्रीणि दिनानि पाणिना पात्रे।
स भवेद् यदा सशब्दस्ततोगुडशतपलानि त्रीणि ॥
देयानि प्रविलीनमग्नियोगात्तं तु जल द्रोण संयुक्तम्।
पक्षद्वयेन पेयो रसनातिमनोहरः सुरभिगन्धः ॥
ताम्बूलासव एष रसायनानां भवेदग्र्यः।
प्रीणयति हन्ति गुदजान् सर्वांश्च कफोद्भवांस्तथा रोगान् ॥
बलवर्ण शुक्र जननो ह्युपयोगादश्मरीं हन्यात्।
संवत्सरमुपयुक्तः स्थिरवयसं मानवं कुरुते ॥

ओषधियां—पान के पत्ते १५०० शिला पर पीस लें, धावे के फूल २८ तोले, सुपारी, कीकर या बबूल की छाल

४०-४० तोले, शीतलचीनी, पिप्पल आठ आठ तोले, त्रिफला पृथक् २, जायफल, छोटी इलायची, और लौंग प्रत्येक ४ तोले।

जल—प्रथम बार ७॥ सेर; तीन दिन बाद १३ सेर दुबारा डालें।

मधुर द्रव्य—मधु ५ सेर; गुड़ १५ सेर।

संधानावधि—अठारह दिन।

उपयोग—यह कफनाशक, बल वीर्यवधक तथा कांतिकारक और उत्तम वयः स्थापक रसायन है। एक वर्ष तक सेवन करने से ये सब लाभ होते हैं। मात्रा १। तोले से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—सब से प्रथम मृत्पात्र को जामन के नए हरे पत्तों के क्वाथ से धोकर सुखा कर उसके भीतर लाख का लेप करें। लेप सूख जाए तो खांड और अगर की धूनी देकर आधे मटके को जमीन में दबा दें। सब औषधियों को कूट कर ७॥ सेर से द्विगुण अर्थात् १५ सेर जल ५ सेर मधु सहित पात्र में डाल कर हाथ से भली प्रकार मसल कर मिला दें। तीन दिन पश्चात् इस में संधान प्रारम्भ होने के साथ शब्द सुनाई पड़ने लगेगा। अब इस में १३ सेर का द्विगुण २६ सेर जल तथा ५ सेर गुड़ और मिला दें। घोल में मिठास नष्ट हो जाए तो ५ सेर गुड़ फिर मिलाना चाहिये। संधान समाप्त हो जाने पर छान लें।

इसमें लाक्षा का लेप पात्र की सच्छिद्रता निवारण करने के लिए है। मद्योद्गम के लिए धातकीपुष्प, सुपारी, खदिर या बबूल की छाल आदि कषाय रस प्रधान द्रव्य डाले गए हैं; जैसा कि "वासार्थम्" इस पद से स्पष्ट है। एक ही बार संधान न करके दो बार में मधुर द्रव्य डाल कर मद्योद्गम करना भी इसमें अभिप्रेत है।

दन्त्यरिष्ट

[चरकसंहिता, सुश्रुत संहिता, अष्टाङ्गहृदय, चक्रदत्त गदनिग्रह, वंगसेन]

दन्ती चित्रक मूलानामुभयोः पञ्चमूलयोः ।
प्रत्येकं पल माभाग्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥
त्रिपलं त्रिफलायश्च दलानां तत्र दापयेत् ।
रसे चतुर्थ शेषे तु पूते शीते प्रदापयेत् ॥
तुलां गुडस्य तत्तिष्ठेन्मासार्धं घृतभाजने ।
तन्मात्रया पिबेन्नित्य मर्शोभ्यः स विमुच्यते ॥
ग्रहणी पाण्डुरोगघ्नं वातवर्चोऽनुलोमनम् ।
दीपनं रुचिदं चैव दन्त्यरिष्टमिमं विदुः ॥

क्वाथ्य द्रव्य – जमालगोटे की जड़, चित्रकमूल, दशमूल और त्रिफला प्रत्येक ४ तोले ।

क्वाथ्य जल— १३ सेर ४ छटांक। मधुर द्रव्य–गुड़ ५ सेर।

संधानावधि—पन्द्रह दिन।

उपयोग—यह वात तथा मल का अनुलोमन करता है। अग्नि दीपक और रुचिवर्धक है। वातिक अर्श में विशेष लाभदायक है। मात्रा १। से २॥ तोला।

विशेष द्रव्य—जल द्विगुण लें। गुड़ एक बार में जल से पंचमांश डालें; दो तीन वार थोड़ा २ करके पांच सेर तक मिलाएं। संधानार्थ धातकीपुष्प ८ तोले तथा किण्व एक पाव डालें।

दुरालभारिष्ट

(चरकसंहिता, गदनिग्रह, योगरत्नाकर)

दुरालभायाः प्रस्थं च चित्रकस्य वृषस्यच ।
पथ्यामलकयोश्चैव पाठाया नागरस्य च ॥
दद्याद् द्विपलिकान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेषे रसे पूते सुशीते शर्कराशतम् ॥
दत्त्वा कुंभे दृढे स्थाप्य मासार्धं घृतभाजने ।
प्रलिप्ते पिप्पली चव्य प्रियङ्गु मधुसर्पिषा ॥
तस्य मात्रां पिबेत् काले शार्करस्य यथाबलम् ।
अर्शांसि ग्रहणी दोषमुदावर्तमरोचकम् ॥
शकृन्मूत्रानिलोद्गार विबन्धानग्नि मार्दवम् ।
हृद्रोग पाण्डुरोग च सर्वमेतत् प्रसाधयेत् ॥

क्वाथ्य द्रव्य—धमासा ६४ तोले, चित्रक, वांसा, हरड़, आमला, पाठा, सोंठ प्रत्येक ८ तोले।

क्वाथ्य जल—१३ सेर १२ छटांक। शेष-३ सेर ४ छटांक।

मधुर द्रव्य—चीनी ५ सेर।

संधानावधि—पन्द्रह दिन।

उपयोग—मल, मूत्र, वायु और उद्गार इन के अवरोध को दूर करके अग्नि को दीप्त करता है। अर्श ग्रहणी, उदावर्त, अरुचि और हृद्रोग में लाभदायक है। मात्रा १। से २॥ तोला।

विशेष द्रष्टव्य-इसका योगरत्नाकर और चरक संहिता में शर्करासव नाम से पाठ है। आज्य भाण्ड में पिप्पली, चव्य, प्रियङ्गु

और मधु तथा घृत का लेप करें। जल द्विगुण लें। चीनी को पंचमांश लेकर दो तीन बार में पूर्ण मात्रा में मिलाएं। संधानार्थ धातकीपुष्प ८ तोले तथा किण्व आधसेर प्रक्षेप रूप में मिलाएं।

दुरालाभासव

(अष्टांग हृदय)

पचेद् दुरालभाप्रस्थं द्रोणेऽपां प्राभृतैः सह।
दन्ती पाठाग्नि विजया वासामलक नागरैः॥
तस्मिन् सिताशतं दद्यात्पादस्थेऽन्यच्च पूर्ववत्।
लिपेत् कुंभं तु फलिनी कृष्णाचव्याज्यमाक्षिकैः॥
दत्वा प्रस्थं च धातक्याः स्थापयेद् घृतभाजने।
पक्षात् संशीलितोऽरिष्टः करोत्यग्निं निहन्ति च॥
गुदज ग्रहणी पाण्डु कुष्ठोदर गर ज्वरान्।
श्वयथु प्लीह हृद्रोग गुल्म यक्ष्मवमिकृमीन्॥

क्वाथ्य द्रव्य— धमासा ६४ तोले, दन्तीमूल, पाठा, चित्रक, हरड़, आमला, वासा, सोंठ प्रत्येक आठ तोले।

क्वाथ्य जल—१३ सेर। शेष—३ सेर ४ छटांक।

मधुर द्रव्य—चीनी ५ सेर।

प्रक्षेप—धावे के फूल ६४ तोले। संधानावधि—पन्द्रह दिन।

उपयोग— यह अग्नि दीपक है और अर्श, ग्रहणी, पाण्डु, उदर, शोथ, प्लीहा, हृद्रोग, गुल्म, राजयक्ष्मा, वमन और कृमि रोगों में लाभदायक है।

मात्रा—१। से २॥ तोला।

विशेष द्रष्टव्य—दुरालभारिष्ट के ही समान इसमें भी आज्य भाण्ड में प्रियंगु, पिप्पली, चव्य, घृत एवं शहद का लेप करना चाहिए। जल तथा चीनी भी पूर्वोक्त अनुपात में लें।

द्राक्षासव

(गदनिग्रह, योगरत्नाकर)

द्राक्षापलशतं दत्त्वा चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत्।
द्रोणशेषे रसे तस्मिन् पूते शीते प्रदापयेत् ॥
शर्करायास्तुलां दत्त्वा तत्तुल्यं मधुनस्तथा।
पलानि सप्त धातक्याः स्थापयेदाज्यभाजने ॥
जातीलवंग कंकोल लवली फल चन्दनैः।
कृष्णां त्रिगन्ध संयुक्तां भागैपधपल शकैः ॥
त्रिः सप्ताहाद् भवेत् पेयं तत्र मात्रा यथा बलम्।
नाम्ना द्राक्षासवो ह्येष नाशयेद् गुदकीलकान् ॥
शोफा रोचक हृत्पाण्डु रक्तपित्त भगन्दरान्।
गुल्मोदर कृमि ग्रन्थि क्षत शोषज्वरान्तकृत् ॥
वात पित्त प्रशमनः शस्तश्च बल वर्णकृत् ॥

क्वाथ्य द्रव्य—मुनक्का ५ सेर।
क्वाथ्य जल—जल १ मन १२ सेर। शेष—१३ सेर।
मधुर द्रव्य—चीनी ५ सेर, मधु ५ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल २८ तोले, जायफल, लौंग, शीतलचीनी, लालचन्दन, पिप्पली, हरफारेवड़ी, दालचीनी, तेजपत्र प्रत्येक ४ तोले। संधानावधि—इक्कीस दिन।

उपयोग—यह वात एवं पित्त दोषों को सम करता हुवा अग्नि को दीप्त करता है। मन्दाग्नि जन्य अर्श; शोथ; पांडु, हृद्रोग, गुल्म उदर कृमि, ज्वर तथा कृशता को दूर करके बल और कांति को बढ़ाने के लिए प्रशस्त है मात्रा १। से २॥ तोला।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण करें; और चीनी तथा मधु आधी २ मात्रा में दो बार करके डालें। किण्व १ सेर मिलाएं।

पील्वासव

(गद निग्रह)

द्रोणं पीलुरसस्य वस्त्रगलितं न्यस्तं हविर्भाजने ।
युञ्जीत द्विपलैर्मदा मधुफला खर्जूर धात्री फलैः ॥
पाठामा द्रिदुराल भाम्ल विदुल व्योषत्वगेलैलकैः ।
स्पृक्का कोल लवंगवेल्ल चपलामलाग्निकैः पालिकैः॥
गुडशतविनियोजितं निवाते निहितमिदं प्रपिवञ्च पचमात्रात्।
प्रशमयति गुदाङ्कुरान सगुल्माननलबलं च संविधत्ते ॥

औषधियां व द्रव—पीलू का स्वरस १३ सेर।

मधुर द्रव्य—गुड़ ५ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—धाय के फूल मुनक्का, खजूर, आमला, पाठा, अतीस, धमासा, अम्लबेत, वेत, पिप्पली, सोंठ, मरिच, दालचीनी छोटी इलायची, असवरग, बेर, लौंग, मरिच, पिप्पली-मूल, चित्रक प्रत्येक ४ तोले।

उपयोग—यह अग्नि दीपक है। अर्श तथा गुल्म रोग में लाभदायक है। मात्रा-दो तोले।

विशेष द्रष्टव्य—गुड़ आधा-आधा करके दो बार में मिलाए किण्व आध सेर प्रक्षेप के साथ डालें।

पील्वासव (२)

(गद निग्रह)

मूर्वा खर्जूर पाठानिलरिपुमधुकं कच्छुरा हारहूरा।
कोलत्वग्वेतसाम्लं दहन मिशिकणा कृष्णाविश्वालवंगम् ॥
त्वग्लोध्रादाडिमाच्च पलमितमपि पृथक् दन्तिमूलेन युक्तम्।
पीलुद्रोणे द्विपदां गुडपलशतयुक् धान्यराशौ निदध्यात् ॥
अर्शः सीहं च गुल्मं जठर गदमथो नाशयेच्चाग्निमान्द्यम्।
कुर्याच्चाग्नि प्रदीप्तं प्रबलबलयुतं पीलुसंज्ञासवोऽयम् ॥

औषधियां एवं द्रव—पीलु का रस १३ सेर।

मधुर द्रव—गुड ५ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य— मूर्वा, खजूर, पाठ, एरण्डमूल, मुलहठी, कौंच की जड़, मुनक्का, बेरा की छाल, अम्लवेतस, चित्रक, सौंफ, पिप्पली, सोंठ, मरिच, लौंग, लोध्र, अनार की छाल, और दन्तीमूल प्रत्येक ४ तोले।

संधानावधि—पन्द्रह दिन।

उपयोग—यह आसव अग्नि को प्रदीप्त करके अग्निमान्द्य, अर्श, सीहा, गुल्म तथा विविध उदर रोगों को दूर करता है।

मात्रा १। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—गुड़ आधा आधा करके दो वार में मिलाएं। धातकीपुष्प ८ तोले तथा किण्व आध सेर डालें।

फलारिष्ट

(चरक संहिता, गदनिग्रह)

हरीतकीफलप्रस्थं प्रस्थमामलकस्य च ।
विशालाया दधित्थस्य पाठाचित्रकमूलयोः ॥
द्वे द्वे पले समाक्षिप्य द्विद्रोणे साधयेदपाम् ।
पादावशेषे पूते च रसे तस्मिन् प्रदापयेत् ॥
गुडस्यैकां तुलां वैद्यः संस्थाप्यो घृतभाजने ।
पक्षस्थित पिबेदेनं ग्रहण्यर्शोविकारवान् ॥
हृत्पाण्डुरोगं सीहानं कामलां विषमज्वरम् ।
वर्चोमूत्रानिलकृतान् बिबन्धानग्निमार्दवम् ॥
कासं गुल्ममुदावर्तं फलारिष्टो व्यपोहति ।
अग्निसंदीपनो ह्येष कृष्णात्रेयेण भाषितः ॥

क्वाथ्य द्रव्य—बड़ी हरड़ ६४ तोले, आमला ६४ तोले इन्द्रायण, कैथ, पाठा, चित्रकमूल प्रत्येक आठ तोले ।

क्वाथ्य जल—२६ सेर । शेष–६ सेर ८ छटांक ।

मधुर द्रव्य—गुड़ ५ सेर । संधानावधि—पन्द्रह दिन ।

उपयोग— यह आसव अग्निदीपक और मल-मूत्र प्रवर्तक तथा वायु का अनुलोमक है । ग्रहणी, अर्श, हृद्रोग, पाण्डु सीहा, कामला, विषमज्वर, गुल्म, उदावर्त तथा कास रोग में प्रशस्त है । मात्रा १। से २॥ तोले ।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें । गुड़ आधा आधा करके दो वार मिलाएं । धातकीपुष्प ८ तोले तथा किण्व आध सेर डालें ।

अजीर्णाधिकार

मुस्तकारिष्ट

(भैषज्य रत्नावली)

मुस्तकस्य तुलाद्वन्द्वं चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ।
पादशेषे रसे तस्मिन् क्षिपेद् गुडतुलात्रयम् ॥
धातकीं षोडशपलां यमानीं विश्वभेषजम् ।
मरिचं देवपुष्पं च मेथीं वह्निं च जीरकम् ॥
पलयुग्ममितं क्षिप्त्वा रुद्धभाण्डे निधापयेत् ।
संस्थाप्य मासमात्रन्तु ततः संस्रावयेद् भिषक् ॥
अजीर्णमग्निमान्द्यञ्च विषूचीमपि दारुणाम् ।
ग्रहणीं विविधां हन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥

क्वाथ्य ओषधियां— नागरमोथा १० सेर ।

क्वाथ्य जल—१ मन, १२ सेर । शेष—१३ सेर ।

मधुर द्रव्य— गुड़ १५ सेर ।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल ६४ तोले, अजवायन, सोंठ, मरिच, लौंग, मेथी, चित्रक, जीरा; प्रत्येक ८ तोला । संधानावधि-एक मास ।

उपयोग--इस आसव में नागरमोथा प्रधान द्रव्य है। यह "मुस्तं संग्राहकपाचनीयदीपनीयानाम्' संग्राहि, पाचन दीपन पदार्थों में मुख्य है। इसमें अन्य औषधियां भी दीपक पाचक हैं। यह आसव सौम्य होते हुए भी अग्निदीपक होने के कारण अग्निमान्द्य, अजीर्ण, विविध ग्रहणीदोषों और वमन तथा अतिसार में प्रशस्त है। मात्रा १। से २॥ तोला।

विशेष द्रष्टव्य--जल द्विगुण लें और गुड़ पांच पांच सेर करके दो बार डालें। १५ सेर गुड़ का परिमाण अधिक है। किएव १ सेर डालें।

लवङ्गासव

(गदनिग्रह)

लवंग पिप्पली लोध्रमरिचं सैलवालुकम्।
द्विपलांशं जलस्यैतच्चतुर्द्रोणे विपाचयेत् ॥
द्रोणावशेषे रसे तस्मिन् पूते शीते प्रदापयेत्।
गुडस्य द्विशतं तिष्ठेत्तन्सवं घृतभाजने ॥
पश्चादूर्ध्वं रसे जाते दद्यान्मात्रां यथाबलम्।
अस्याभ्यासादरिष्टस्य गुदजा यान्ति संक्षयम् ॥
ग्रहणी पाण्डु हृद्रोग प्लीह गुल्मोदरापहः।
अरुचि कुष्ठ शोथघ्नो वर्णाग्निबलवर्धनः ॥
सद्यः क्षयहरोऽरिष्टः कामलाश्वित्रनाशनः ॥

क्वाथ्य द्रव्य—लौंग, पिप्पली, लोध्र मरिच, एलवालुक प्रत्येक ८ तोले।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर। शेष—१३ सेर।

मधुर द्रव्य—गुड़ १० सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—संधानावधि—पन्द्रह दिन।

उपयोग—अर्श, ग्रहणी, प्लीहा, अरुचि, अग्निमान्द्य, वमन, गुल्म, कामला, और क्षयकास आदि को दूर कर शरीर के बल और वर्ण बढाने के लिए यह आसव लाभदायक है। मात्रा १। से २॥ तोला।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें। गुड़ आधा आधा करके दो बार में मिलाएं। धातकीपुष्प १६ तोले तथा किण्व १ सेर डालें।

❋

पाण्डु-अधिकार

गौडोऽरिष्ट

(चरक संहिता)

मंजिष्ठा रजनी द्राक्षा बलामूलान्ययोरजः ।
लोध्रं चैतेषु गौडः स्यादरिष्टः पाण्डुरोगिणाम् ॥

क्वाथ्य द्रव्य—मजीठ, हलदी, मुनक्का, खरैंटी की जड़ और लोध प्रत्येक ११ छटांक ।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर ! शेष—१३ सेर ।
मधुर द्रव्य—गुड़ ५ सेर, शहद २॥ सेर ।
प्रक्षेप द्रव्य—लौहभस्म १। सेर ।

संधानावधि—एक मास ।

उपयोग—पाण्डु रोगनाशक है । मात्रा १। से २ तोले !

विशेष द्रष्टव्य—प्रथम वार गुड़ और मधु जल से पंचमांश डालें । घोल में मिठास न रहने पर पुनः डालें । संधानार्थ धातकी-पुष्प ८ तोले एवं किण्व आध सेर डालें । लौहचूर्ण या भस्म पूर्वार्ध में दी गई विधि के अनुसार त्रिफला में मिला कर डालें ।

धात्र्यरिष्ट

(चरक संहिता, चक्रदत्त: भैषज्यरत्नावली, गदनिग्रह,)

धात्रीफल सहस्रे द्वे पीडयित्वा रसं तु तम् ।
क्षौद्राष्टांशेन संयुक्तं कृष्णार्धकुडवेन च ॥
शर्कराधतुलोन्मिश्रं पक्वं स्निग्धघटे स्थितम् ।
प्रपिबेन्मात्रया प्रातर्जीर्णे मितहिताशनः ॥
कामला पाण्डु हृद्रोग वातासृग् विषमज्वरान् ।
कास हिक्कारुचि श्वासांश्चैषाऽरिष्टः प्रणाशयेत्॥

ओषधियां--दो हजार आमलों का स्वरस, ८सेर १२ छटांक।
मधुर द्रव्य--चीनी २॥ सेर, मधु १। सेर ।
प्रक्षेप द्रव्य—पिप्पली ८ तोले ।
संधानावधि--पन्द्रह दिन ।

उपयोग--पाण्डु पित्तप्रधान रोग है । पिप्पली पित्त-स्राव में सहायक है और आमला उत्तम पित्त शामक है। इनके योग से यह आसव शीतवीर्य और मुख्यतया पाण्डु, कामला, विषमज्वर एवं हृद्रोग निवारक है । पाण्डु और कामला के दूर हो जाने पर शरीर में नया रक्त बनने लगता है, और रक्त की न्यूनता के कारण होने वाले कास श्वास तथा अरुचि आदि रोग भी नष्ट हो जाते हैं। मात्रा १। से २॥ तोले ।

विशेष द्रष्टव्य—संधानार्थ धातकीपुष्प १६ तोले एवं किण्व आध सेर डालें। मधुर द्रव्य दो बार में मिलाएं। भैषज्य-रत्नावली में 'पक्वम् के स्थान पर' पक्वम्, पाठ है जो कि ठीक नहीं ।

पर्पटाद्यरिष्ट

(भैषज्य रत्नावली)

पर्पटतुलामेकाञ्चतुर्द्रोणे जले पचेत् ।
क्वाथे पादावशेषे च शीते पलशतद्वयम् ॥
दद्याद् गुडस्य धातक्याः पलषोडशिका मता ।
गुडूची मुस्तकं दार्वी दारु व्याघ्री दुरालभा ॥
चव्यं चित्रकमूलञ्च त्रिकटु कृमिनाशनः ।
सर्वाण्येतानि सचूर्ण्य पलांशानि विनिक्षिपेत् ॥
स्थापयित्वा ततो भाण्डे मासादूर्ध्वं पिबेदमुम्।
पाण्डुगुल्मोदराष्ठीला कामलाञ्च हलीमकम् ॥
प्लीहानं यकृतं शोथं सर्वञ्च विषमज्वरम् ।
एषोऽरिष्टो निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥

क्वाथ्य द्रव्य—पित्तपापड़ा ५ सेर।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर। शेष—१३ सेर।

मधुर द्रव्य—गुड़ १० सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल ६४ तोले, गिलोय, नागरमोथा, दारुहल्दी, देवदारु, बड़ी कटहली, धमासा, चव्य, चित्रकमूल, त्रिकटु, विडङ्ग, प्रत्येक ४ तोले। सधानावधि—एक मास।

उपयोग—इस आसव में पित्त पापड़ा प्रधान द्रव्य है; जो

कि पित्तज्वर के शमन के लिए श्रेष्ठ है, "एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वर विनाशनः"। उसके साथ गिलोय आदि पित्तशामक तथा ज्वरघ्न और अग्निदीपक औषधियों का योग किया गया है। अतः यह अरिष्ट पित्त विकृति और ज्वर के कारण रक्ताणुओं की अल्पता हो जाने से उत्पन्न पाण्डु, कामला, यकृत् और प्लीहा आदि रोगों में प्रशस्त है। मात्रा १। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य--जल द्विगुण लें; और गुड़ आधा आधा करके दो बार में मिलाएं। किण्व १ सेर डालें।

बीजकारिष्ट

(चरकसंहिता, गदनिग्रह)

बीजकात् षोडशपलं त्रिफलायाश्च विंशतिः ।
द्राक्षायाः पञ्च लाक्षायाः सप्तद्रोणे जलस्य तत् ॥
साध्यं पादावशेषे तु पूते शीते समावपेत् ।
शर्करायास्तुलां प्रस्थं माक्षिकस्य च कार्षिकम् ॥
व्योषं व्याघ्रनखोशीरं क्रमुकं सैलवालुकम् ।
मधूकं कुष्ठमित्येतच्चूर्णितं घृतभाजने ॥
यवेषु दशरात्रस्थं, ग्रीष्मे द्विः शिशिरे स्थितम् ।
पिबेत्तद् ग्रहणी पाण्डु रोगार्शः शोफगुल्मनुत् ।
मूत्रकृच्छ्राश्मरी मेह कामलासन्निपातनुत् ॥

क्वाथ्य द्रव्य— विजैसार ६४ तोले, त्रिफला मिलित १ सेर, मुनक्का २० तोले, लाक्षा २८ तोले।

क्वाथ्य जल—१३ सेर। शेष—३ सेर ४ छटांक।

मधुर द्रव्य—चीनी ५ सेर, मधु ६४ तोले।

प्रक्षेप द्रव्य—पिप्पली, सोंठ, मरिच, नख खस, सुपारी, एलवालुक, मुलहठी, और कुष्ठ प्रत्येक १ तोला।

संधानावधि—ग्रीष्म ऋतु में दस दिन, शीत में बीस दिन।

उपयोग—यह आसव ग्रहणी, अर्श, पाण्डु, शोथ, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह तथा कामला में उपयोगी है। मात्रा १। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें। मधुर पदार्थ प्रथम बार जल से पञ्चमांश डालें, शेष दो या तीन बार में डालें। संधानार्थ धातकीपुष्प १६ तोले और किण्व १ सेर मिलाए। लाक्षा का क्वाथ करने के लिए उसे ३ तोले लोध, ३॥ माशे सर्जक्षार और कुछ बेरी के पत्तों के साथ पोटली में बांधकर क्वाथ्य जल में छोड़ देना चाहिए।

मंडूरारिष्ट

(गदनिग्रह; योगरत्नाकर)

मण्डूरस्य तु शुद्धस्य तुलार्धं परिकल्पितम्।
तद्वल्लोहस्य पत्राणि तिलोत्सेधप्रमाणतः॥
गुडाज्जीर्णात्तु पञ्चाशत् कोलप्रस्थत्रयं तथा।
निकुंभचित्रकाभ्यां च पले द्वे द्वे सुचूर्णिते॥
पिप्पलीनां विडङ्गानां कुडवं कुडवं पृथक्।
त्रींश्चापि त्रिफलाप्रस्थान् जलद्रोणे समावपेत्॥

अर्धमासस्थितो धान्ये पेयोऽरिष्टः प्रमाणतः ।
दोषानुभयतः स्राव्य पाण्डुरोगं नियच्छति ॥
कृमीनर्शांसि कुष्ठं च कासं श्वासं कफामयान् ।
एषोऽरिष्टस्तु माण्डूरः शोफ पाण्डवामयापहः ॥

औषधियां—शुद्ध मण्डूर २॥ सेर, शुद्ध सूक्ष्म लोह चूर्ण २॥ सेर, बेरी की जड़ अथवा छाल २ सेर ६ छटांक २ तोले; दन्तीमूल, चित्रक ८-८ तोले, पिप्पली, विडङ्ग, १६-१६ तोले, त्रिफला मिलित २ सेर ६ छटांक २ तोले ।

जल—१३ सेर ।

मधुर द्रव्य—पुराना गुड़ २॥ सेर ।

संधानावधि – पन्द्रह दिन ।

उपयोग—यह आसव ऊर्ध्वगत एवं अधोगत दोषों को निकाल कर पाण्डु रोग का शमन करता है । शरीर में रक्त की वृद्धि होती है और उसकी अल्पता के कारण होने वाले अर्श, कृमि, कास, श्वास आदि कफ विकार तथा शोथ प्रभृति रोग दूर होते हैं । मात्रा १। से २॥ तोले ।

विशेष द्रष्टव्य—निर्दिष्ट मात्रा में गुड़ डालें । जब वह आसव में परिणत होजाए तो इतना ही गुड़ पुनः डालें । संधानार्थ यद्यपि बेरी की छाल लिखी है, तथापि आध सेर किण्व और धातकी पुष्प ८ तोले मिलाना प्रशस्त है । लौह एवं मण्डूर का चूर्ण पूर्वार्ध में लिखी विधि के अनुसार मिलाएं ।

लोहासव

(गदनिग्रह)

फलत्रिक निम्बपटोल मुस्ता पाठा मृता चित्रक चन्दनं च ।
विडङ्ग मञ्जिष्ठ मधूकसार कर्चूरवासा त्रिवृताहरिद्राः ॥
दुरालभा पर्पट कण्टकारी शक्रासनं यासक चर्मरङ्गे ।
शशाङ्क लेखा । कपिकच्छुमूलं मेथी च बिल्वं कुटजश्च तिक्ता ॥
त्रायन्तिका पुष्करकस्यमूलं पलैक मानानि महौषधानि ।
षष्टिः पलानां खदिरस्य सारो ह्ययोरजः स्यात् पलयुग्ममानम् ॥
स्याल्लौह किट्ट च तुलाप्रमाणं तत्पञ्चकं केवुक जीवनीयम् ।
प्रक्षिप्य भाण्डे शशि युग्मवस्रान् सूर्यातपे स्थाप्य ततस्तु योज्यः ॥
लोहासवोऽयं भिषजोपदिष्टः सर्वोत्तमो रोग विनाश हेतुः ॥

ओषधियां—त्रिफला, नीम की छाल, पटोल पत्र, नागरमोथा, पाठा, गिलोय, चित्रक, लालचंदन, विडङ्ग, मजीठ, महुए का गोंद, कचूर, वासा, त्रिवृत्, हलदी, धमासा, पित्तपापड़ा, कटहली इन्द्रजौ, जवासा, सनाय, वावची, कौंच की जड़, मेथी, वेलछाल; कूड़े की छाल, कुटकी, त्रायमाणा, पोहकरमूल प्रत्येक ४--४ तोले; कत्था ३ सेर; शुद्ध लौह चूर्ण ८ तोले; मंडूरभस्म ५ सेर; केमुक तथा जीवनीयगण की ओषधियां २०--२० तोले ।

जल--२ मन २४ सेर ।

मधुर द्रव्य--- गुड़ १ मन ।

संधानावधि--२१ दिन धूप में रखें ।

उपयोग---यह आसव विषमज्वर, यकृत् प्लीहा, पाण्डु, कामला आदि रोगों के लिए लाभदायक है। मात्रा--१। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य---वैद्य समाज में इस लोहासव का प्रचलन नहीं; ज्वराधिकारोक्त लौहासव प्रायः सर्वत्र व्यवहार में आता है। योग में जल और मधुर द्रव्यों का वर्णन नहीं है। परिभाषा के अनुसार इसमें जल व गुड़ की कल्पना की है। इसमें २० सेर गुड़ प्रारम्भ में और २० सेर घोल में मिठास न रहने पर दुवारा मिलाना चाहिए। लोह और मंडूर निर्दिष्ट प्रकार से त्रिफला में विलीन कर के डालें। किण्व ४ सेर मिलाएं।

रक्तपित्ताधिकार

उशीरासव

(भैषज्यरत्नावली, शार्ङ्गधर संहिता, गदनिग्रह)

उशीरं बालकं पद्मं काश्मीरीं नीलमुत्पलम् ।
प्रियङ्गुं पद्मकं लोध्रं मञ्जिष्ठां धन्वयासकम् ॥
पाठां किराततिक्तं च न्यग्रोधोदुम्बरं शठीम् ।
पर्पटं पुण्डरीकं च पटोलं काञ्चनारकम् ॥
जम्बूशाल्मलिनिर्यासं प्रत्येकं पल सम्मितान् ।
भागान् सुचूर्णितान् कृत्वा द्राक्षायाः पलविंशतिम् ।
धातकीं षोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत् ।
शर्करायास्तुलां दत्त्वा क्षौद्रस्यैकतुलां तथा ॥
मासकं स्थापयेद् भाण्डे मांसीमरिचधूपिते ।
उशीरासव इत्येष रक्तपित्त विनाशनः ॥
पाण्डु कुष्ठ प्रमेहार्शः कृमि शोथहरस्तथा ॥

औषध द्रव्य—खस, नेत्रबाला, लाल कमल, श्वेत कमल, नीलोफर, प्रियङ्गु, गंभारी, पद्मकाष्ठ, लोध्र, मजीठ, धमासा, पाठा चिरायता, बड़ की छाल, गूलर की छाल, कचूर, पित्त पापड़ा,

पटोलपत्र, कचनार की छाल, जामुन की छाल, मोचरस प्रत्येक ४ तोले; मुनक्का १ सेर, धावे के फूल ६४ तोले।

जल—२५ सेर १० छटांक।

मधुर द्रव्य—चीनी ५ सेर; मधु ५ सेर।

संधानावधि—एक मास

उपयोग— यह आसव शीत वीर्य, ग्राहि, पित्त शामक, और मूत्रल है। अधोगामी रक्तपित्त, रक्तार्श, रक्तातिसार, अत्यातव आदि व्याधियों में अधिक रक्तस्राव होने पर इस आसव से बहुत लाभ होता है। उष्णवात [सूजाक] मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात आदि रोगों में इस के सेवन से मूत्र शुद्ध तथा अधिक परिमाण में होता है। मात्रा—१। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—जल को उबाल कर ३२ शतांश तक शीतल करके ५ सेर चीनी का घोल बनाएं और औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण करके डालें। चीनी का स्वाद न रहने पर ५ सेर शुद्ध मधु या चीनी पुनः डालें। पात्र में जटा मांसी और मरिच की धूनी दें।

राजयक्ष्माधिकार

कूष्माण्डासव

(गद निग्रह)

कूष्माण्डं जर्जरीकृत्य रस मादाय यत्नतः ।
द्राक्षा. गुडार्धं दातव्य, चूर्णमेषां विनिक्षिपेत् ॥
कटुत्रिक. लवङ्गञ्च चातुर्जातं तथैव च ।
कङ्कोलकं जातीफलं जातीपत्री प्रियङ्गुकम् ॥
कपित्थ वत्सकं चैव बीजं गोक्षुरकस्य च ।
सत्वं गुडूच्या भार्गीच बलाबीज तथैव च ॥
हपुषा क्रमुकं चैव देवदारु मदावहम् ।
गायत्रीसार जलदं चित्रकं च फलत्रिकम् ॥
रास्ना यष्ट्याह्वक चापि तुम्बरु नागकेशरम् ।
ग्रन्थिक चाजमोदा च कारवी दीप्यकस्तथा ॥
कट्फलं च तुगाक्षीरी ह्याकल्लकमुटिङ्गणम् ।
कपित्थवल्कलं चैव शताह्वा गजशेलुकम् ॥
कलिङ्गकांश्च काकोली शठी मोचरस घनम् ।
कोकिलाक्षस्य बीजानि कसेरुः सहदेविका ॥

भूनिम्बं चविका स्पृक्का पद्मकं च निशाद्वयम् ।
धान्यकं सुरदाली च क्षीरकन्दं तथैव च ॥
एतानि चाक्षमात्राणि लोहचूर्णं पलाष्टकम् ।
धातक्याः षोडशपलं घृतभाण्डे निधापयेत् ।
मासार्धं च तथा भूमौ निक्षिपेदतियत्नतः ।
अनेन विधिना सिद्ध आसवः परिकीर्तितः ॥
पीत्वास्य पलमेकं तु प्रातरुत्थाय नित्यशः ।
धातुक्षयं च मन्दाग्निं प्रमेहं पाण्डुमेव च ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषान् लोहोदरभगन्दरान् ।
आमवातं रक्तपित्तं श्लेष्मरक्तं तथैव च ॥
निहन्ति वातजान् रोगान् मेदः स्थौल्यापहासवः ॥

औषध द्रव्य – पिप्पली, सोंठ, मरिच, लौंग, दालचीनी, छोटी-इलायची, तेजपत्र, नागकेसर, जायफल, कंकोल, जावित्री, प्रियङ्गु, कैथ कूड़े की छाल, गोखरु, सतगिलोय, भारंगी, खरैंटी के बीज, हाऊबेर, सुपारी, देवदारु, धावे के फूल, नागरमोथा, कत्था, चित्रक, हरड़, बहेड़ा; आमला, रास्ना मुलहठी, तुंवरु, नागकेसर, पिप्पलीमूल, अजमोद, काला-जीरा, सफेद जीरा, कायफल; वंशलोचन, अकरकरा, उटंगण के बीज, कैथ की छाल, सोयाबीज, लसोड़ा, इन्द्रजौं; काकोली, शतावरी, कचूर; मोचरस, नागरमोथा, तालमखाना, कसेरु, सहदेवी, चिरायता, चव्य, काश्मीरी पत्ता, पद्माख; हलदी, दारुहलदी, धनियां, बन्दाल, क्षीरविदारी, असवरग प्रत्येक १-१ तोला। लौहचूर्ण ३२ तोले; धावे के फूल १३ छटाक।

द्रव द्रव्य—पेठे का स्वरस १३ सेर।

मधुर द्रव्य—गुड़ ६॥ सेर। संधानावधि—पन्द्रह दिन।

उपयोग—यह आसव धातुक्षय, अग्निमान्द्य, प्रमेह, पाण्डु, अर्श, ग्रहणी, प्लीहावृद्धि, उदररोग, भगन्दर, आमवात, रक्त-पित्त और श्लेष्म रक्त की व्याधियों में लाभदायक है।

मात्रा १। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—आधा आधा गुड़ दो बार कर के मिलाए और आध सेर किण्व प्रक्षेप के साथ ही डाल दें।

खर्जूरासव

(योगरत्नाकर)

पञ्च प्रस्थं समादाय खर्जूरस्य विचक्षणः।
द्रोणाम्भसि पचेत् सम्यगुत्ताय गालयेत्ततः॥
कुंभीं सुधूपितां कृत्वा प्रक्षिपेत्तं रसं शुभम्।
हपुषां ताम्रपुष्पीं च कषाये तत्र निक्षिपेत्॥
द्वारं निरुध्य सुदृढं निक्षिपेद् वसुधातले।
सप्तकद्वययोगेन सिद्धोऽयं त्वासवो रसः॥
रोगराजं तथा शोफं प्रमेहं पाण्डु कामलाम्।
ग्रहणीं पञ्च गुल्मार्शो नाशयत्यतिवेगतः॥

क्वाथ्य द्रव्य—खजूर ४ सेर।

क्वाथ्य जल—१३ सेर।

शेष—खजूरों के भली प्रकार गल जाने पर मसल कर छान लें। जल लगभग ६ सेर शेष रहेगा।

प्रक्षेप द्रव्य—हाऊवेर और धावे के फूल प्रत्येक ६ छटांक।

संधानावधि - चौदह दिन।

उपयोग—इस आसव में खजूर के ही समान गुण हैं। खजूर मधुर, शीत, स्निग्ध बल्य एवं बृंहण है। वात और पित्त दोषों का शमन कर कफ संस्थान तथा वातसंस्थान का पुष्ट करने के लिए यह आसव विशेष उपयोगी है। मात्रा २॥ तोले।

खर्जूरासव (२)

(गदनिग्रह)

खर्जूर मुस्तामलकी निकुंभ द्राक्षाभया पूगफलानि पाठा।
भार्ङ्गी शठी कुष्ठ जलाजमोद पलङ्कषा पिप्पलीमूलकानि॥
पुनर्नवा कायफलं प्रियङ्गुः कर्चूरकं कृष्णमजाजिविस्त्र।
त्रिवृच्छिवाच्छलि धमासकं च लज्जालुरोहीत कलिङ्गमूलम्॥
अमूनि सर्वाणि महौषधानि चत्वारि चत्वारिपलोन्मितानि।
मांसी चतुर्जात कणालवङ्गं जातीफल चन्दन लौह चूर्णम्॥
प्रमाणतो द्विर्द्विपलान्यमूनि सुधातकीपुष्पमणानिसप्त।
गुडस्य सप्त त्रिगुणानि दद्यान्मणानि संचूर्ण्य ततः समस्तम्॥
घृतस्य भाण्डे विपुले निवेश्य दशोत्तरं शेरशतं जलस्य।
क्षिप्त्वा क्षिपेत् पञ्च दिनानि भूमौ निष्पन्नकल्कं हृदये विचार्य।
षष्ठे दिने तच्च नियोजनीयं ताम्रस्य यंत्रद्वयमध्यभागे॥
शतत्रयं ताम्रलतादलानां सहस्रयुग्मं शतपत्रकानाम्।
प्रक्षाल्य देयं विधिनाथ संधिं विमुद्रय चुल्ल्यां विनिवेश्य यंत्रम्॥
निष्काशयेदर्क मतो यथावद्दत्त्वा जलं चोपरि यंत्रकस्य।

बलाबलं रोगनिपीडितानां विमृश्य देयः पलिकाप्रमाणः ॥
खार्जूरसंज्ञः खलु आसवोऽयं विषूचिकायक्ष्मभयं निहन्ति !
हृद्रोग कास विषम ज्वर शोकतर्ष श्वास प्रमेह बल संक्षय पाण्डु रोगान् ।
हिध्माश्च शीर्षगतरोगवियोगकारी रुच्यग्नि वर्धनबल प्रदवृष्य एषः ॥

क्वाथ्य द्रव्य—खजूर, नागरमोथा, आमला, दन्तीमूल, मुनक्का, हरड़, सुपारी, पाठा, भारंगी, कचूर, कूठ, नेत्रबाला, अजमोद, गुग्गलु, पिप्पलीमूल, पुनर्नवा, कायफल, प्रियङ्गु, कचूर, पिप्पली, श्वेतजीरा, हाऊबेर, त्रिवृत्, हरड़, तिल, धमासा, लाजवन्ती के बीज, रोहेड़ा, कुलञ्जन की जड़, प्रत्येक १६ तोले; जटासांसी, दालचीनी, तेजपत्र, छोटी इलायची, नागकेसर, पिप्पली, लौंग, जायफल, चन्दन श्वेत, लौहचूर्ण; प्रत्येक ८-८ तोले; धावे के फूल २८ तोले।

जल—२ मन ८ सेर।

मधुर द्रव्य—गुड़ १ सेर १ छटांक।

संधानावधि पांच दिन। इसके बाद ३०० पान तथा २००० गुलाब के फूल डाल कर अर्क यंत्र से अर्क निकाल लें।

उपयोग—यह आसव अग्निदीपक रुचिवर्धक तथा बल्य होने से राजयक्ष्मा, कास, श्वास, हृद्रोग, शिरोरोग, प्रमेह, पाण्डु, और निर्बलता में विशेष उपयोगी है। मात्रा ४-५ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—इसमें मधुर द्रव्य अत्यल्प परिमाण में हैं। इससे कुछ संधान होने की संभावना नहीं। अतः २० सेर गुड़ डाल कर संधान करें। किण्व ४ सेर डालें।

गण्डीरासव

(गदनिग्रह)

जातसारं तु गण्डीरं सपुष्पं परिशोषयेत्।
खण्डशः क्षोदितं कृत्वा तस्य पञ्चाढकं पचेत्॥
त्रींश्चैव त्रिफला प्रस्थान् दशमूली तुलां तथा।
दद्यात् कुटजवल्कस्य पलानां पञ्च विंशतिम॥
इन्द्रयवं सभल्लातं विडङ्गं घनमेव च।
अर्धप्रस्थसमं भागानेकैकस्य समावपेत्॥
पाठा मधुरसा दन्ती षड्ग्रन्था चित्रकस्तथा।
एषां दशपलान् भागान् मृद्वीकायास्तथाढकम॥
दश द्रोणेषु तोयस्य पचेद् द्विद्रोणशेषितम।
पूते तस्मिन् कषाये तु गुडस्यैका तुला क्षिपेत्॥
तथा तु शोधितस्यापि शुभे भाण्डे निधापयेत्।
द्वौ प्रस्थौ मधुनश्चैव द्राक्षयोरजसस्तथा॥
अर्धप्रस्थो विडङ्गानां कुडवो मरिचस्य च।
एतयोः सूक्ष्मचूर्णानि प्रतीवापार्थमाहरेत्।
चूर्णं मरीचकानां च मधुना सह योजयेत्।
कर्तव्यो भाण्डलेपस्तु समासिच्य निधापयेत्॥
एष मासस्थितः पेयो यथाव्याधि यथाबलम्।
गण्डीरारिष्ट इत्येष व्यासतः परिकीर्तितः॥
एष शोषान् प्रमेहांश्च गुल्मांश्च जठराणि च।
कृमि कुष्ठानि बर्ध्मानि प्लीहार्शांसि भगन्दरम्॥

श्वयथून् पाण्डु रोगांश्च ग्रहणीदोषमेव च।
ग्रन्थींश्च गलगण्डं च गण्डमालां तथैव च॥
विषमज्वर कासांश्च विद्रधीन् वातशोणितम्।
अरिष्टः शमयत्याशु युधि शुक्र इवासुरान्॥

क्वाथ्य द्रव्य—फूलों सहित सूखी मजीठ १६ सेर; त्रिफला मिलित २ सेर ६ छटांक २ तोले, दशमूल मिलित ५ सेर, कूड़े की छाल १। सेर, इन्द्रजौं, शोधित भिलावे, विडङ्ग, नागरमोथा, प्रत्येक ३२ तोले; पाठा, मूर्वा, दन्तीमूल, वचा, चित्रक, प्रत्येक आध सेर; मुनक्का ३ सेर ३ छटांक।

क्वाथ्य जल—३ मन ८ सेर। शेष-२५ सेर ६ छटांक।

मधुर द्रव्य—गुड़ ५ सेर, मधु १ सेर १० छटांक।

प्रक्षेप द्रव्य—लौह चूर्ण १ सेर १० छटाक, विडङ्ग ३२ तोले; और मरिच १६ तोले। संधानावधि—एक मास।

उपयोग—इस आसव में पाचक, दीपक, रक्त शोधक, ज्वरघ्न तथा बलवर्धक औषधियों का योग है। यह वात और श्लेष्म दोष तथा रक्त धातु की विकृति को दूर कर क्षय, शोष प्रमेह; गुल्म, उदर रोग, कृमि, कुष्ठ, ग्रन्थि, बध, प्लीहा, अर्श, भगन्दर; शोथ; पाण्डु रोग; ग्रहणी विकार; गलगण्ड; गण्डमाला; विषम ज्वर; कास; विद्रधि एवं वातरक्त रोगों में लाभदायक होता है। मात्रा १। से २॥ तोला।

विशेष द्रष्टव्य—इस में मधुर द्रव्य कम परिमाण में हैं; अतः मधुर द्रव्य प्रथम बार निर्दिष्ट मात्रा में पूरे डालने चाहिएं। फिर उनके आसव में परिणत होजाने पर इतनी ही मात्रा में और डालें। लौहचूर्ण निर्दिष्ट विधि से त्रिफला में घोल

कर मिलाए। संधानार्थ १६ तोले धातकीपुष्प एवं १ सेर किण्व डालें।

द्राक्षारिष्ट

(योगरत्नाकर; भैषज्यरत्नावली; शार्ङ्गधर संहिता, योगचिन्तामणि, बृहद् योगतरंगिणी)

मृद्वीकायास्तुलार्धं तु द्विद्रोणेऽपां विपाचयेत्।
पादशेषे कषाये च पूते शीते प्रदापयेत्॥
गुडस्य द्वितुलां मानीं धातक्या घृतभाजने।
विडङ्गं फलिनीं कृष्णा त्वगेलापत्र केसरम्॥
मरिचं च भिषक् चूर्णं सम्यग्दत्त्वा विचक्षणः।
क्षिपेच्च पालिकैर्भागैः स्थापयेच्चैव तद्दिने॥
ततो यथाबलं पीत्वा कास श्वास गलामयान्।
हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रमुरः संधान कारकम्॥
चतुर्थभागं द्राक्षाया धातकीमत्र केचन।
प्रयच्छन्ति ततो वीर्यमेतस्योच्चैः प्रजायते॥

क्वाथ्य द्रव्य—मुनक्का २॥ सेर।
क्वाथ्य जल— २५ सेर। शेष— ६ सेर ८ छटांक।
मधुर द्रव्य—गुड़ १० सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—विडंग, प्रियङ्गु, पिप्पली, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेसर, मरिच, प्रत्येक ४-४ तोले; धावे के फूल ३२ तोले।

उपयोग—यह अरिष्ट कास, श्वास, गल रोग, राजयक्ष्मा और उरः क्षत आदि रोगों को नष्ट करता है, साधारण कास, तथा कफ प्रधान और श्वसनक सान्निपातों की कास में द्राक्षारिष्ट का सेवन बहुत लाभदायक है। छोटे बालकों को होने वाले पसली रोग में ३० से ६० बूंद तक की मात्रा में गरम जल में मिला कर वार बार देते रहना चाहिए। स्वस्थ या रुग्ण दोनों अवस्थाओं में द्राक्षारिष्ट के सेवन से अग्नि दीप्त होती है, भोजन में रुचि बढ़ती है और बल तथा मांस की वृद्धि होती है।
मात्रा १। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—हमने द्राक्षारिष्ट का यह पाठ योगरत्नाकर के अनुसार दिया है, परन्तु वहां इसे द्राक्षासव नाम दिया है भैषज्यरत्नावली एवं शार्ङ्गधर संहिता में द्राक्षारिष्ट नाम से पाठ है, परन्तु इनमें धातकीपुष्प डालने का उल्लेख नहीं। योगरत्नाकर में धात की पुष्प ३२ या ५० तोले डालने के दो विकल्प हैं। स्पष्ट है कि ५० तोले डालने से संधान शीघ्र होगा और मद्यांश भी अधिक बनेगा।

इस में गुड़ की मात्रा बहुत अधिक तथा जल का परिमाण अत्यल्प है। इसलिए जल द्विगुण लें। प्रथम वार २॥ सेर गुड़ और इतना ही दूसरी वार अर्थात् कुल ५ सेर गुड़ डालना पर्याप्त है। मधुरता के लिए शेष गुड़ सधान पूर्ण हो जाने पर आसव को छान कर मिलाना चाहिये। किण्व आध सेर डालें।

पिप्पल्यासव

(शार्ङ्गधरसंहिता; भैषज्यरत्नावली; योग रत्नाकर; वृहद् योगतरंगिणी)

पिप्पली मरिचं चव्यं हरिद्रा चित्रको घनः ।
विडङ्गं क्रमुको लोध्रः पाठा धात्र्येलवालुकम् ॥
उशीरं चन्दनं कुष्ठं लवङ्गं तगरं तथा ।
मांसी त्वगेला पत्रञ्च प्रियङ्गु नागकेसरम् ॥
एषामर्धपलान् भागान् सूक्ष्मचूर्णीकृतान् शुभान् ।
जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा दद्याद् गुड तुलात्रयम् ॥
पलानि दश धातक्या द्राक्षा षष्टिपला भवेत् ।
एतान्येकत्र संयोज्य मृद्भाण्डे च विनिक्षिपेत् ॥
ज्ञात्वा गतरसं सर्वं पाययेदग्न्यपेक्षया ।
क्षयं गुल्मोदरं कार्श्यं ग्रहणीं पाण्डुतां तथा ॥
अर्शांसि नाशयेच्छीघ्रं पिप्पल्याद्यासवस्त्वयम् ।

औषध द्रव्य— पिप्पली, मरिच, चव्य, हलदी, चित्रक, नागरमोथा, वायविडङ्ग, सुपारी, लोध, पाठा, आमला, एलवालुक खस; श्वेत चन्दन; कुष्ठ; लौंग; तगर; जटामांसी; दालचीनी; छोटी इलायची; तेजपत्र; नागकेसर; प्रियङ्गु; प्रत्येक २-२ तोले; धावे के फूल ४ तोले, मुनक्का ३ सेर ।

जल—२५ सेर १० छटांक ।

मधुर द्रव्य— गुड़ १५ सेर। संधानावधि—एक मास।

उपयोग—यह आसव अग्नि दीपक तथा वात और कफ दोषों का शामक है। बार बार होने वाले आमाजीर्ण तथा दाल, गेहूं या दूध के सेवन से हुआ अजीर्ण इसके सेवन से दूर होता है। वातगुल्म, कफगुल्म, वातार्श, जीर्ण ग्रहणीविकार, पाण्डु, क्षय और विविध उदर रोगों में पिप्पल्यासव उत्तम लाभदायक है। मात्रा १।-२॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—योगरत्नाकर और बृहद् योगतरंगिणी में इसका पिप्पल्यरिष्ट नाम से राजयक्ष्मा में पाठ है। उसमें लौंग, जटामांसी और छोटी इलायची के स्थान पर लवली (हरफर्री) और सौंफ के पत्तों का उल्लेख है। गुड़ पांच पांच सेर करके तीन बार डालें।

पुष्करमूलासव

(गदनिग्रह)

तुलां पुष्करमूलस्य तदर्धं च दुरालभा।
तदर्धेन तु धान्यार्कं व्योषाश्च पलविंशतिः॥
मंजिष्ठा कुष्ठ मरिचं कपित्थं देवदारु च।
विडङ्गं चविका लोध्रं पिप्पलीमूल मेव च॥
काश्मर्यं च तथोशीरं रास्ना भार्गी च नागरम्।

एषां द्विपलिकान् भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसःपचेत् ॥
द्रोण शेषे कषाये तु चूर्णीकृत्य प्रदापयेत् ।
गुडस्य त्रिशतं तत्र धातक्याः पल विंशतिम् ॥
मरिचं केशरं श्यामा एलात्वक् पत्रकं पलम् ।
कुडवं पिप्पलीनां तु चूर्णीकृत्य प्रदापयेत् ॥
घृतभाण्डे स्थितं मासं पिबेत्मात्रां यथाबलम् ।
क्षयापस्मार कासासृक् शोफ गुल्म भगन्दरान्॥
पुष्करासव इत्येष प्रयोगादेव नाशयेत् ॥

क्वाथ्य द्रव्य—पुष्करमूल ५ सेर, धमासा २॥ सेर, धनिया १। सेर, त्रिकटु मिलित १ सेर, मजीठ, कुष्ट, मरिच; कैथ का फल, देवदारु, विडङ्ग, चव्य, लोध्र, पिप्पलीमूल, गंभारी, खस, रास्ना, भारंगी, सोंठ, प्रत्येक ८ तोले।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर। शेष– १३ सेर।

मधुर द्रव्य—गुड़ १५ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल १ सेर, मरिच, नागकेसर, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, मजीठ, प्रत्येक ४ तोले, और पिप्पली १६ तोले।

संधानावधि—एक मास।

उपयोग—स्वतन्त्र अथवा क्षय रोग के उपद्रव रूप कास, श्वास तथा पार्श्वशूल आदि कष्टों में पुष्करमूलासव विशेष उपयोगी है। मात्रा १। से २।। तोले।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुणलें; गुड़ पांच पांच सेर दो बार में मिलाएं, कुल दस सेर पर्याप्त है; शेष गुड़ आसव को

अधिक मधुर बनाने के लिए संधान पूर्ण होजाने पर उसे छान कर मिलाना चाहिए। किण्व १ सेर मिलाएं।

बब्बूलारिष्ट

(शार्ङ्गधर संहिता, गद निग्रह, भैषज्य रत्नावली)

तुलाद्वयं तु बब्बूल्याश्चतुर्द्रोणे जले पचेत्।
द्रोण शेषे रसे शीते गुडस्य त्रितुलां क्षिपेत्॥
धातकीं षोडशपलां कृष्णां च द्विपलां तथा।
जातीफलानि कङ्कोलमेलात्वक् पत्र केशरम्॥
लवङ्गं मरिचं चैव पलिकान्युपकल्पयेत्।
मास भाण्डे स्थितस्त्वेष बब्बूलारिष्टको जयेत्॥
क्षयं कुष्ठमतीसारं प्रमेह श्वास कासकम्॥

क्वाथ्य द्रव्य—कीकर की छाल १० सेर।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर। शेष जल—१३ सेर।

मधुर द्रव्य—गुड़ १५ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल ६४ तोले, पिप्पली ८ तोले, जायफल, शीतलचीनी, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेसर, लौंग, और मरिच, प्रत्येक ४-४ तोले।

सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग—यह अरिष्ट राजयक्ष्मा, कास, श्वास, प्रमेह, अतिसार तथा कुष्ठ में हितकर है। मात्रा १। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें। गुड़ ५-५ सेर कर के तीन वार में मिलाएं। किण्व १ सेर डालें।

बृहन्मूलासव

(गद निग्रह)

महावृक्षवटार्काणां विना मूलैः परैः शुभैः।
अष्टोत्तर शतैरम्भस्त्रिंशद् घटमितं पचेत्॥
तुलात्रय प्रमाणं च दशमूल्यास्तथैव च।
अष्टांशशेषमुत्तार्य गुडस्यानुदिनद्वयम्॥
पलानां विंशतिशतं क्षिपेत्तच्च दृढ़े घटे।
आतपे तं विनिक्षिप्य धारयेत् त्रिदिनं ततः॥
उद्धृत्य धूपिते पात्रे वस्त्रपूतं क्षिपेद् भिषक्।
पलाष्टक हरीतक्याः धातक्याः पला विंशतिम्॥
पूगानां विंशति पलं पिप्पल्याः पलपञ्चकम्।
एला लवङ्ग कङ्कोल जातीत्वक् पत्र केशरम्॥
पल पलं समांश्च चूर्णीकृत्य भिषग्वरः।
आसवे निक्षिपेत्तत्र मधुनः कुडवद्वयम्॥
संजातेऽष्टदिने तस्मादुद्धृत्यान्यत्र तं न्यसेत्।
आसवे सकषाये तु गुडमन्यं प्रदापयेत्॥
निष्कास्य पूर्वचूर्णं तु नवं तत्र नियोजयेत्।
नाम्ना मूलासवो ह्येष रोगराजनिकृन्तनः॥
श्वासामवातविध्वंसो पाण्डु प्लीहोदरापहः।
कृमि गुल्मप्रमेहाणां नाशनो वन्हिदीपनः॥

क्वाथ्य द्रव्य—जड़ रहित सेहुण्ड, बड़ तथा आक प्रत्येक ५ सेर ३२ तोले, दशमूल मिलित १५ सेर।

क्वाथ्य जल—६ मन २४ सेर। शेष जल—१ मन ८ सेर।

मधुर द्रव्य=गुड़ ६ सेर, मधु ३२ तोले।

प्रक्षेप द्रव्य—हरड़ ३२ तोले, धावे के फूल १ सेर, सुपारी १ सेर, पिप्पली २० तोले, छोटी इलायची, लौंग, शीतलचीनी, जावित्री, तेजपत्र, नागकेसर और मिरच प्रत्येक ८-४ तोले।

सन्धानावधि—प्रक्षेप द्रव्य मिलाने से पूर्व तीन दिन धूप में रखें, फिर प्रक्षेप द्रव्य डाल कर आठ दिन संधान करें। आसव में कषाय रस हो जावे तो और गुड़ तथा प्रक्षेप मिलाकर संधान करना चाहिये।

उपयोग—राजयक्ष्मा, श्वास, आमवात, पाण्डु, प्लीहावृद्धि, उदर रोग, कृमि, गुल्म तथा प्रमेहनाशक और अग्निदीपक है। मात्रा १ से २ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—इस में मधुर द्रव्यों का परिमाण न्यून है। कम से कम ६ सेर गुड़ प्रथम वार और इतना ही दूसरी वार मिलाना चाहिए।

माचिकासव

[गद निग्रह]

माचिकायाः शतार्धं तु द्रोणेऽपां विपाचयेत्।
चतुर्थशेषे तस्मिंस्तु पूते शीते प्रदापयेत्॥
गुडस्य द्विशतं दत्वा तत्सर्वं घृतभाजने।
विडङ्गपिप्पली कृष्णा त्वगेलापत्र केसरैः॥
मरिचैश्च तथा चूर्णं सम्यक् कृत्वा विचक्षणः।

क्षिपेच्च पालिकैर्भागै घटनीये समन्ततः ॥
ततो यथाबलं पीत्वा कासश्वास गलामयान् ।
हन्ति यक्ष्माण मत्युग्रमुरः संधान कारकः ॥
माक्षिकासव इत्येष ब्रह्मणा निर्मितः पुरा ॥

काथ्य द्रव्य—मकोय २॥ सेर ।

क्वाथ्य जल—१३ सेर । शेष—३ सेर ४ छटांक ।

मधुर द्रव्य—गुड़ १० सेर ।

प्रक्षेप द्रव्य—त्रिकटु, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेसर, मरिच, प्रत्येक ४-४ तोले, पिप्पली ८ तोले ।

संधानावधि—एक मास ।

उपयोग—कास, श्वास, गलरोग, राजयक्ष्मा तथा उरः क्षत आदि रोग नाशक है । मात्रा १। से २॥ तोला ।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें । गुड़ आधा-आधा करके दो बार में मिलाएं । धातकीपुष्प ४ तोले तथा किण्व २० तोले डालें ।

योगराजासव

[गद निग्रह]

द्राक्षायाः शर्करायाश्च गुडस्य च पृथक् पृथक् ।
पलानि दश कार्याणि पथ्यापलचतुष्टयम् ॥
लवङ्ग बदरी सर्जार्जुनानां छल्लिका भवन् ।

पलं पलं पृथग्ग्राह्यं देवदारु पलं पलम् ॥
चित्रकस्य च लोध्रस्य पिप्पलीमूलकस्य च ।
धातकीकुसुमानां च तद्वद्देयं पलं पलम्॥
तथा पूगफलानां तु कषायाणां पलं मतम् ।
मञ्जिष्ठायाः पले द्वे तु क्वाथ्यसंज्ञानि तानि च॥
लवंगकलिका जातीपत्रैलानागकेशरम् ।
पिप्पली शुण्ठी मरिच त्वङ् मांसी चव्यमुस्तकम्॥
कुष्ठं जातीफलं ग्रन्थिपर्णं स्त्रुक् कटुरोहिणी ॥
एषां पलं पलं ग्राह्यं तज्ज्ञेयं चूर्णसंज्ञितम् ॥
ततस्तु क्वाथ्यद्रव्येभ्यो जलमष्टगुणं क्षिपेत् ।
क्वाथ तदुदकं कुर्यादर्धभागावशेषितम् ॥
तत्क्वाथं वस्त्रपूतं तु भाण्डेऽन्यस्मिन् मनोहरे ।
कृत्वाऽत्र प्रक्षिपेच्चूर्णं तद्भाण्डं धान्यराशिगम्॥
कृत्वा सप्तदिनं शीते काले चोष्णमये तथा ।
यावद्दिनानि त्रीणि स्युः पश्चाद्भाण्डं समुद्धरेत्॥
पुनस्तद्वस्त्रपूतं तु भाण्डे कर्पूरवासिते ।
निक्षिप्य सेवयेत् प्रातः पलमात्रोपलक्षितम् ॥
स दत्तो वातपित्तघ्नो दीपनो रक्तरोगनुत् ।
योगराज इति ख्यात आसवोऽयं गुणोत्तरः॥

क्वाथ्य द्रव्य—मुनक्का ऽ॥ सेर, हरड़ १६ तोले, लौंग, बेरी की छाल, अर्जुनकी छाल, देवदारु, चित्रक, लोध्र, पिप्पलीमूल, धावे के फूल, सुपारी, प्रत्येक ४-४ तोले, मजीठ ८ तोले ।

क्वाथ्य जल—१० सेर ६ छटांक। शेष—५ सेर ३ छटांक।

मधुरद्रव्य—गुड़ ऽ॥ सेर, चीनी ऽ॥ सेर ।

प्रक्षेप द्रव्य—लौंग, जावित्री, छोटी इलायची; तेजपत्र, नागकेसर; पिप्पली, सोंठ, मरिच, दालचीनी, जटामांसी, चव्य, नागरमोथा, कुष्ठ, जायफल, गठिवन, थूहर, कुटकी, प्रत्येक ४-४ तोले ।

संधानावधि—शीतकाल में सात दिन, ग्रीष्म में तीन दिन धान्यराशि में रखें ।

उपयोग—यह अग्नि दीपक, वातपित्तशामक, रक्तरोगनाशक एवं बल्य है । मात्रा १। से २॥ तोला ।

विशेष द्रष्टव्य—मधुरद्रव्य गुड़ ऽ॥, और चीनी ऽ॥ दुबारा भी डालें । किण्व १ पाव डालें ।

कासश्वासाधिकार

कनकासव

(भैषज्यरत्नावली)

संक्षुद्य कनकं शाखा मूलपत्र फलैः सह।
ततश्चतुष्पलं ग्राह्यं वृषमूलत्वचस्तथा ॥
मधूकं मागधी व्याघ्री केशरं विश्वभेषजम्।
भार्गी तालीशपत्रं च संचूर्ण्यैषां पलद्वयम् ॥
सगृह्य धातकीप्रस्थं द्राक्षायाः पलविंशतिम्।
जलद्रोणद्वयं दत्त्वा शकरायास्तुलां तथा ॥
क्षौद्रस्याधतुलां चापि सर्वं सम्मिश्र्य यत्नतः।
भाण्डे निक्षिप्य चावृत्य निदध्यान्मासमात्रकम्॥
निहन्ति निखिलान् श्वासान् कासं यक्ष्माणमेव च।
क्षतक्षीणं ज्वरञ्जीर्णं रक्तपित्तमुरःक्षतम् ॥

औषध द्रव्य--धतूरे का पञ्चांग १६ तोले, वांसे की जड़ की छाल १६ तोले, मुलहठी, पिप्पली, कटहली, नागकेसर, सोंठ, भारङ्गी और तालीश पत्र, प्रत्येक ८ तोले। मुनक्का १ सेर, धातकी-पुष्प ६४ तोले।

जल— २५ सेर १० छटांक ।

मधुर द्रव्य—चीनी ५ सेर; मधु २॥ सेर ।

संधानावधि—एक मास ।

उपयोग— यह उष्ण वीर्य है और वात तथा श्लेष्मदोष-शामक है । श्वास संस्थान पर इसका विशेष प्रभाव है । श्वास संस्थान की शोथ इससे कम होती है और कफस्राव होता है । धतूरे के कारण वेदना की शान्ति होती है । कास, श्वास, राजयक्ष्मा, रक्तपित्त तथा जीर्णज्वर और हिक्का में इसका विशेष प्रयोग होता है । स्तन्य; पित्त, प्रस्वेद आदि के स्राव कनकासब से कम हो जाते हैं । कोष्ठ, पित्ताशय तथा वृक्क आदि के शूल में कनकासव के प्रयोग से वेदना कम अनुभव होती है । मात्रा आधा से १। तोला ।

इसके अति सेवन के कारण विपलक्षण होने पर मट्ठा; अथवा नीबू या इमली के शरबत में जल मिला कर पिलाना चाहिये ।

विशेष द्रष्टव्य—५ सेर चीनी के आसव में परिणत हो जाने पर ५ सेर चीनी और डालें,अन्यथा आसव खट्टा होजायगा । किण्व १ सेर मिलाएं ।

कूष्माण्डासव

(योग चिन्तामणि)

कूष्माण्डं च फलं पक्वं तस्मिंश्छिद्रं तु कारयेत् ।
छिद्रमध्ये गुडो देयो द्वितुलश्च शनैः शनैः ॥
त्वचाबीजं च उत्कृष्य स्निग्धभाण्डे निधापयेत् ।
बदरीत्वक् पलान्यष्टौ तस्य क्वाथं प्रदापयेत् ॥
द्वौ कसेलौ च धातक्या हपुषा च पलं पलम् ।
त्रिफला च ह्रीवेरञ्च शृङ्गी भार्ङ्गी च पुष्करम् ॥
तालमूली स्वयंगुप्ता कंकोल वशलोचनम् ।
यष्टी माचरसं मुस्ता ग्रन्थिकं चाष्टवर्गकम् ॥
चातुर्जातं विडङ्गानि व्योष चित्रक कुंकुमम् ।
जातीपत्रं लवङ्गञ्च करभं मालतीफलम् ॥
दशांघ्रि रक्तसारं च कट्फलं रेणुका शटी ।
तिक्तसार चतुःकर्ष आटरूषंकुलिञ्जनम् ॥
अजमोदाश्वगन्धा च चव्यं माजूफलं वरी ।
सारं सूरणतेजबलं तालीशं श्यामपूगकम् ॥
एतेषां कर्षमात्रञ्च सूक्ष्म चूर्णं तु कारयेत् ।
मूलभाण्डे क्षिपेत् सर्वं पलमेकं भजेन्नरः ॥
कासं श्वासञ्च हृद्रोगं पाण्डुरोगं क्षतक्षयम् ।
गुल्मोदरं ग्रहण्यर्शो मूत्रकृच्छ्रं तथाश्मरी ॥
प्रमेह शोफातिसार वातपित्त कफापहः ।
कूष्माण्डासव इत्येष बलकृन्मलशोधनः ॥

औषध द्रव्य—छिलके और बीजों से रहित पेठा १२ सेर, बेरी की जड़ की छाल ३२ तोले, कसेला, कसेली, धावे के फूल, हाऊबेर, त्रिफला, सुगन्धवाला; काकड़ासिंगी, भारंगी, पुष्करमूल, मूसली, कौंच के बीज, शीतलचीनी, वंशलोचन, मुलहठी, मोचरस, नागरमाथा, पिप्पलीमूल; अष्टवर्ग व चातुर्जातक की प्रत्येक औषध, विडङ्ग, त्रिकटु, चित्रक, केसर, जावित्री, लौंग, अकरकरा, जायफल, दशमूल की पृथक् २ सब ओषधियां, लालचन्दन कायफल, संभालू के बीज, कचूर, कुटकी, प्रत्येक ४-४ तोले, बांसा, कुलंजन, अजमोद, अश्वगन्धा, चव्य, माजूफल, शतावरी, लौहभस्म. जिमीकन्द, तेजबल, तालीशपत्र, और चिकनी सुपारी प्रत्येक १ तोला।

जल—एक मन जल में सब ओषधियों को खूब औटाकर मटके में डालें।

मधुर द्रव्य—गुड़ १० सेर।

सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग– कूष्माण्डासव मल शोधक त्रिदोष शामक और बल्य है। खांसी, दमा, हृदयरोग, पाण्डु, राजयक्ष्मा, उरःक्षत, क्षय; गुल्म, उदररोग, संग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह, शोथ, और अतिसार में लाभदायक है।

मात्रा—१। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—इसमें मधुर द्रव्यों का परिमाण अल्प है। अतः आसव के घोल में प्रथम ८ सेर गुड़ मिलाएं; वह आसव में परिणत होजाए तो इतना ही गुड़ और मिला कर संधान पूर्ण करें। किण्व १॥ सेर डालें।

चित्तचन्दिरासव

(सिद्धभेषजमणिमाला)

मुस्ता मरिच चव्याग्नि निशाकृष्णा विडङ्गकम् ।
आमलोशीरशैलेय पूग लोध्र द्विपत्रकम् ॥
कटवी श्रीखण्ड तगर मांसी दारुसिता समम् ।
गुन्दनी नागपुष्पाणि त्रिपिचूनि पृथक् पृथक् ॥
प्रस्थार्धं धातकीपुष्प द्राक्षाप्रस्थै स्त्रिभिर्मिता ।
पुराणः पञ्चदशभिः प्रस्थैः संकलितो गुडः ॥
भाण्डे षड्विंशति प्रस्थशम्बरे घृतचिक्कणे ।
क्षिप्त्वा सर्वं पिधायाथ पक्षमात्रं निधापयेत् ॥
प्रमृद्य गालितोऽत्यर्थं फाण्टः स्याच्चित्तचन्दिरः ।
कासं श्वासं क्षय मान्द्यं बन्धं हन्ति प्रकाशते ॥

औषध द्रव्य—नागरमोथा, मरिच, चव्य; चित्रक, पिप्पली हलदी, वायविडङ्ग, आमला, खस, शिलापुष्प, सुपारी, लोध, चाण्डालीकन्द कटुकी, चन्दन, तगर, जटामांसी, दालचीनी गोन्दनी और नागकेसर, प्रत्येक ३-३ तोले। धावे के फूल ३२ तोले; मुनक्का २ सेर ७ छटांक।

जल—२० सेर १३ छटांक।

मधुरद्रव्य—गुड़ १२ सेर।

संधानावधि—पन्द्रह दिन।

उपयोग—यह आसव कास, श्वास, क्षीणता, अग्निमान्द्य तथा मलबन्ध में उपयोगी है। मात्रा १। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—गुड आधा-आधा करके दो वार में मिलाना उचित होगा। किण्व तीन पाव डालें।

त्रायमाणासव

[गर्दनिग्रह]

त्रायन्ती कट्फलं दन्ती पौष्करं कण्टकारिका ।
दुरालभाञ्जनं सिंही पिप्पलीमूलमेव च ॥
धात्री कृमिहरं भार्ङ्गी माचिका चैलवालुकम् ।
पथ्या शठी विशाला च भागानष्टपलोन्मितान्॥
चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा शृतं द्रोणावशेषितम् ।
शतत्रयं माक्षिकस्य धातक्या पलविंशतिम् ॥
श्यामा पलानि चत्वारि त्वगेलापत्रकेशरम् ।
भागान् द्विपलिकानेषां चूर्णं कृत्वा विनिक्षिपेत्॥
त्रायमाणासवो ह्येष कासश्वासामय प्रणुत् ।
पाण्डु हृद्रोग गुल्मार्शः सन्निपातज्वरापहः ॥

क्वाथ्य द्रव्य—त्रायमाण, कायफल, दन्तीमूल, पुष्करमूल, कटहली, धमासा, रसौंत, बड़ी कटहली, पिप्पलीमूल, आंवला, विडङ्ग, भारंगी, मकोय, एलवालुक, हरड़, कचूर और इन्द्रायण प्रत्येक ३२ तोले।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर। शेष—१३ सेर।

शेष—१३ सेर ।

मधुर द्रव्य--मधु १५ सेर ,

प्रक्षेप द्रव्य--धावे के फूल १ सेर, पिप्पली १६ तोले, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेसर, प्रत्येक ८-८ तोले ।

संधानावधि--एक मास ।

उपयोग--त्रायमाणासव कास, श्वास, पाण्डु, हृद्रोग, गुल्म और अर्श आदि रोगों में लाभदायक है। मात्रा १। से २॥ तोला ।

विशेष द्रष्टव्य--मधु ५-५ सेर करके तीन बार में डालें। किण्व आधा सेर मिलाएं ।

मूर्छाधिकार

अश्वगन्धारिष्ट

(भैषज्यरत्नावली)

तुलार्धं चाश्वगधाया मुषल्याः पलविंशतिः ।
मञ्जिष्ठाया हरीतक्या रजन्योर्मधुकस्य च ॥
रास्ना विदारी पार्थानां मुस्तक त्रिवृतोरपि ।
भागान् दशपलान् दद्यादनन्ताश्यामयोस्तथा॥
चन्दनद्वितयस्यापि वचायाश्चित्रकस्य च ।
भागानष्टपलान् क्षुण्णानष्टद्रोणेऽम्भसःपचेत्॥
द्रोणशेषे कषायेऽस्मिन् पूते शीते प्रदापयेत् ।
धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम ॥
व्योषं तु द्विपलं ग्राह्यं त्रिजातक चतुः पलम् ।
चतुः पल प्रियङ्गोश्च द्विपलं नागकेशरम् ॥
मासादूर्ध्वं पिवेदेनं कर्षैक परिमाणतः ।
मूर्छामपस्मृतिं शोषमुन्मादमपि दारुणम् ॥
कार्श्यमर्शांसि मन्दत्वमग्नेर्वातभवान् गदान् !
अश्वगन्धाद्यरिष्टोऽयं पीतो हन्यादसंशयम् ॥

काथ्यद्रव्य—अश्वगन्धा २॥ सेर, सफेद मुसली १ सेर; मजीठ, बड़ी हरड़, हल्दी, दारुहल्दी, मुलहठी, रास्ना, बिदारीकन्द अर्जुन छाल, नागरमोथा, त्रिवृत् प्रत्येक आध सेर, अनन्तमूल, काली सारिवा, सफेद चन्दन, लालचन्दन, वचा, और चित्रक प्रत्येक ३२ तोले।

काथ्य जल—२ मन २२ सेर।

शेष जल—१३ सेर।

मधुर द्रव्य—मधु १५ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—धातकी पुष्प ६४ तोले, त्रिकटु मिलित ८ तोले, त्रिजातक मिलित १६ तोले, प्रियङ्गु १६ तोले, नाग केसर ८ तोले।

संधानावधि—एक मास।

उपयोग—इस अरिष्ट का वातसंस्थान पर विशेष प्रभाव होता है। यह मूर्छा; अपस्मार, हिस्टीरिया, उन्माद तथा मस्तिष्क की निर्बलता और इन्द्रिय दुर्बलता के लिए श्रेष्ठ प्रयोग है, अग्निमान्द्य तथा बबासीर को दूर करता है और शरीर में बल तथा मांस की वृद्धि करता है। क्षीण एवं कृश व्यक्तियों के लिए अमृत तुल्य है। मात्रा १। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—जल को द्विगुण करें। दस सेर मधु या गुड़ पांच पांच सेर करके दो बार डालना पर्याप्त है। संधान पूर्ण हो जाने पर आसव को अधिक मधुर करना हो तो शेष पांच सेर मधु या गुड़ और मिलादें। किण्व आध सेर डालना चाहिये।

चण्डासव

[श्री पं० राधाकृष्ण जी द्विवेदी]

औषध द्रव्य—शंखपुष्पी का रस ५ सेर, धावे के फूल २० तोले ; मुनक्का २० तोले, ब्राह्मी, जटामांसी और नेत्रबाला ५-५ तोले, छोटी इलायची के दाने, तालीशपत्र, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेसर, और काली मिरच २॥-२॥ तोले। मुनक्का को चटनी की तरह पीसलें, शेष ओषधियों को जौकुट करलें।

मधुर द्रव्य—चीनी १। सेर, मधु १। सेर।

सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग-यह आसव मस्तिष्क पर शामक प्रभाव पहुंचाता है। उन्माद, अपस्मार, मदात्ययजनित निद्रानाश प्रमेह, पूयमेह और दाह आदि रोगों को दूर कर मानसिक अस्वस्थता को शान्त करता है। मात्रा १। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—१० सेर शंख पुष्पी को जल से धो कर स्वरस निकालें। इसमें लगभग २॥ सेर जल मिलाना पड़ता है।

पानात्यय-अधिकार

श्रीखण्डासव

(भैषज्यरत्नावली)

श्रीखण्डं मरिचं मांसी रजन्यौ चित्रकं घनम् ।
उशीरं तगरं द्राक्षा चन्दनं नागकेसरम् ॥
पाठां धात्रीं कणां चव्यं लवङ्गैश्चैलवालुकम् ।
लोध्रं चार्धपलोन्मानं जल द्रोण द्वये क्षिपेत् ॥
द्राक्षां षष्टिपलां तत्र गुडस्य च तुलात्रयम् ।
धातकीं द्वादशपलश्चैकैकं परियोजयेत् ।
मासं संस्थाप्य मृद्भाण्डे वस्त्रपूतं रसं न्यसेत् ॥
पाययेन् मात्रया वैद्यो वयोबन्ह्याद्यपेक्षया ।
पानात्ययं परमदं पानाजीर्णञ्च नाशयेत् ॥
पानविभ्रममत्युग्रं श्रीखण्डासव आशु च ॥

औषधद्रव्य—श्वेतचन्दन, मिरच, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, चित्रक, नागरमोथा, खस, तगर, मुनक्का, लालचन्दन, नागकेसर, पाठा, आमला, पिप्पली, चव्य, लौंग, एलवालुक, लोध्र, प्रत्येक २-२ तोले, मुनक्का ३ सेर, धावे के फूल ४८ तोले ।

जल—२५ सेर १० छटांक।

मधुर द्रव्य—गुड़ १५ सेर।

संधानावधि—एक मास।

उपयोग—अधिक मद्यपान जनित बिविध रोगों का नाशक है। मात्रा २-४ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—गुड़ ५-५ सेर की मात्रा में दो बार करके मिलाएं। १० सेर गुड पर्याप्त है: आसव बनजाने पर मधुरता के लिए शेष पांच सेर गुड़ भी मिला सकते हैं। त्रिफला १ सेर डालें।

वातव्याधि-अधिकार

पञ्चमूलासव

(गदनिग्रह)

अजागोसुरभीणां च चतुः कर्षं खरोष्ट्रयोः ।
मूत्रं संग्राह्य कुम्भे च स्थाप्य चूर्णं प्रदापयेत् ॥
वचाया वातकुम्भस्य लशुनस्यैलया सह ।
लवङ्गस्यापि प्रत्येकं पलार्धं कृमिनाशिनः ॥
व्योषस्यापि पलं सार्धमभयैकपला मता ।
चुल्ल्यग्रे वासरान् सप्त निक्षिप्याशु समुद्धरेत्॥
प्लीहोदरहरं दिव्यं मूढवातकफापहम् ।
अशीति वातशमनं पञ्चमूत्रासवं विदुः ॥

औषध द्रव्य—बकरी, गाय, भैंस, गदही तथा ऊंटनी का मूत्र ४-४ तोले ; वचा, वातकुम्भ, लहसन, बड़ी इलायची, लौंग, विडङ्ग, प्रत्येक २ तोले; त्रिकटु ६ तोले ; हरड़ ४ तोले ।

सन्धानावधि—सात दिन चूल्हे के पास की भूमि में दबाएं।

उपयोग—यह आसव अपस्मार, विविध वातविकार, कफ दोष तथा प्लीहा वृद्धि में प्रशस्त है। मात्रा १-२ तोले ।

विडङ्गारिष्ट

(गदनिग्रह, भैषज्यरत्नावली, शार्ङ्गधर संहिता, योगरत्नाकर)

विडङ्गं पिप्पलीमूलं पाठा धात्र्येलवालुकम् ।
कुटजत्वक्फलं रास्ना भार्ङ्गी पञ्चपलोन्मितम् ॥
अष्टद्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणशेषं तु कारयेत् ।
पूते शीते क्षिपेत्तस्मिन् माक्षिकस्य शतत्रयम् ॥
धातक्या विंशतिपलं चूर्णं कृत्वा तु दापयेत् ।
व्योषस्य तु पलान्यष्टौ त्रिजात द्विपलान्यपि ॥
फलिनीहेमतोयानां सरोध्राणां पलं पलम् ।
घृतभाण्डे समाधाय मासमेकं विधारयेत् ॥
एष योगो हरत्येव प्रत्यष्ठीला भगन्दरान् ।
ऊरुस्तम्भाश्मरीमेहं गण्डमालां सविद्रधिम् ॥
आढ्यवातं हनुस्तम्भं विडंगारव्यो महासवः ॥

क्वाथ्य द्रव्य—विडङ्ग, पिप्पलीमूल, पाठा, आमला, एलवालुक, कूड़े की छाल, इन्द्रजौं, रास्ना, भारङ्गी, प्रत्येक २०-२० तोले ।

क्वाथ्य जल—२ मन २२ सेर ।

शेष—१३ सेर ।

मधुर द्रव्य—मधु १५ सेर ।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल १ सेर, त्रिकटु ३२ तोले; त्रिजातक ८ तोले, प्रियङ्गु, नागकेसर, गन्धवाला, और लोध्र, प्रत्येक ४-४ तोले ।

सन्धानावधि—एक मास ।

उपयोग—प्रत्यष्ठीला, भगन्दर, ऊरुस्तम्भ, पथरी, प्रमेह, गण्डमाला, विद्रधि, आढ्यवात एवं हनुस्तम्भ आदि रोगनाशक है। मात्रा १। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—शार्ङ्गधरसंहिता, भैषज्यरत्नावली; तथा योगरत्नाकर में विद्रधि रोग में विडङ्गारिष्ट का पाठ है। उसमें भारङ्गी और गन्धवाला का पाठ नहीं है; कचनार की छाल का पाठ अधिक है। इसका प्रयोग भी वातव्याधि की अपेक्षा विद्रधि सदृश रोगों में अधिक होता है। इसके निर्माण में जल द्विगुण लें और मधु ५-५ सेर के परिमाण में तीन वार करके डालें। किण्व आध सेर मिलाएं।

बलारिष्ट

(भैषज्यरत्नावली)

बलाश्वगन्धयोर्ग्राह्यं पथक् पलशतं शुभम् ।
चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा द्रोणमेवावशेषयेत् ॥
शीते तस्मिन् रसे पूते क्षिपेद् गुडतुलात्रयम् ।
धातकीं षोडशपलां पयस्यां द्विपलांशिकाम् ॥
पञ्चाङ्गुलपलद्वन्द्वं रास्नामेलां प्रसारणीम् ।
देवपुष्पमुशीरञ्च श्वदंष्ट्राञ्च पलांशिकाम् ॥
मासं भाण्डे स्थितस्त्वेष बलारिष्टो महाफलः ।
हन्त्युग्रान् वातजान् रोगान् बलपुष्ट्यग्निवर्धनः ॥

क्वाथ्य द्रव्य—बला और अश्वगन्धा प्रत्येक ५-५ सेर।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर।

शेष—१३ सेर।

मधुर द्रव्य—गुड १५ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल ६४ तोले, शतावरी ८ तोले, एरण्डमूल ८ तोले; रास्ना, बड़ी इलायची, गंधप्रसारणी, लौंग, खस, और गोखरू, प्रत्येक ४-४ तोले।

सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग—यह अरिष्ट वातसंस्थान की निर्बलता से होने वाले शिरः शूल, कंप, आक्षेप, अपस्मार, आदि विविध रोगों को दूर कर अग्नि, बल तथा मांसादि धातुओं की वृद्धि करने के लिए प्रशस्त है। मात्रा २ से ४ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें। गुड ५-५ सेर करके दो तीन बार में मिलाएं। किण्व आध सेर डालें।

गुल्माधिकार

कुमार्यासव

(गदनिग्रह)

रसस्तुलार्धं कौमारस्तदर्धगुडमिश्रितः ।
चातुर्जातलवङ्गानां सैंधवस्य निशाद्वयोः ॥
कुबेर कृष्णामरिच धातकीनां पलं पलम् ।
पथ्याचूर्णं पलयुगं पलं चाकल्लकस्य तु ॥
उग्रगन्धा जातिपत्री विडङ्गानां पलं पलम् ।
एकीकृत्य शुचौ भाण्डे पत्तमेकं निधापयेत् ॥
पलार्धं भक्षयेन्नित्यं गुल्मोदावर्तनाशनः ।
आध्मानं पार्श्वशूलं च जठरार्ति कफं हरेत् ॥
मन्दाग्नि शमयेच्छ्वासं कासं हिक्कां क्षयं तथा ॥
यकृत् प्लीहं तथा शोफं नाशयत्येव सेवितः ।

काथ्य द्रव्य---घीकार को जल के बिना पका कर छान कर २॥ सेर रस लें।

मधुर द्रव्य—गुड़ १। सेर।

प्रक्षेप द्रव्य— छोटीइलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेसर, सेंधानमक, हलदी, दारुहलदी, पिप्पली, मरिच, करंजवा, धात्रे के फूल, अकरकरा, वचा, विडङ्ग एवं जावित्री प्रत्येक ४-४ तोले, हरड़ ८ तोले।

संधानावधि—पन्द्रह दिन।

उपयोग—यह आसव गुल्म, उदावर्त, आध्मान, अग्निमान्द्य, उदर रोग, पार्श्वशूल, कास, श्वास, हिक्का, क्षय, यकृत् वृद्धि, प्लीहावृद्धि तथा शोथ नाशक है।

मात्रा— १। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—गुड़ आधा आधा करके दो वार में मिलाएं। किण्व ८ तोले डालें।

कुमार्यासव

(शार्ङ्गधरसंहिता)

सुपक्करससंशुद्धं कुमार्याः पत्रमाहरेत्।
यत्नेन रसमादाय पात्रे पाषाणमृण्मये॥
द्रोणे गुडतुलां दत्वा घृतभाण्डे निधापयेत्।
माक्षिकं पक्कलौहं च तस्मिन्नर्धतुलां क्षिपेत्॥
कटुत्रिकं लवंगञ्च चातुर्जातकमेव च।
चित्रकं पिप्पलीमूलं विडङ्गं गजपिप्पली॥
चविकं हपुषा धान्यं क्रमुक कटुरोहिणी।
मुस्ता फलत्रिकं रास्ना देवदारु निशाद्वयम्॥

मूर्वा मधुरसा दन्ती मूलंपुष्करसंभवम् ।
बला चातिबला चैव कपिकच्छुस्त्रिकण्टकम् ॥
शतपुष्पा हिंगुपत्री आकल्लकमुटिङ्गणम् ।
पुनर्नवाद्वयं लोध्रं धातुमाक्षिकमेव च ॥
एषां चार्धपलं दत्वा धातक्यास्तु पलाष्टकम् ।
पलं चार्धपलं चैव पलद्वयमुदाहृतम् ॥
वपुर्वयः प्रमाणेन बलवर्णाग्निदीपनम् ।
बृंहणं रोचनं वृष्यं पक्तिशूलनिवारणम् ॥
अष्टावुदरजान् रोगान् उदावर्तमपस्मृतिम् ।
मूत्रकृच्छ्रमपस्मारं शुक्रदोषं तथाश्मरीम् ॥
कृमिजं रक्तपित्तं च नाशयेत्तु न संशयः ।

काथ्य द्रव्य—घीकार: को बिना विधि पूर्वक पका कर छान कर १२ सेर रस लें ।

मधुरद्रव्य—गुड़ ५ सेर, मधु २॥ सेर ।

प्रक्षेप द्रव्य—लौहभस्म २॥ सेर, पिप्पली, सोंठ, मरिच लौंग, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेसर, चित्रक, पिप्पलीमूल, विडङ्ग, गजपिप्पली, चव्य, हाऊबेर, धनिया, सुपारी, कुटकी, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आमला, रास्ना, देवदारु, हलदी, दारुहलदी मूर्वा, गिलोय, जमाल गोटे की जड़, पोहकर-मूल, खरेंटी, कंघी, कौंच के बीज, गोखरु, सौंफ हिंगुपत्री, अकरकरा, उटंगण के बीज, दोनों पुनर्नवा, लोध्र, और स्वर्ण-माक्षिक की भस्म, प्रत्येक २-२ तोले ; धावे के फूल ३२ तोले ।

सन्धानावधि—एक मास ।

उपयोग—यह अग्निदीपक, रुचिवर्धक, बृंहण और वृष्य है। परिणामशूल, उदररोग, उदावर्त, मृगी, हिस्टीरिया, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रदोष, पथरी, तथा रक्तपित्त नाशक है। मात्रा– १। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—गुड व मधु दो वार में आधी-आधी मात्रा में डालें। किण्व आध सेर मिलाएं।

कुमार्यासव

(गद निग्रह)

द्रोणमानं कुमार्यास्तु रसं भाण्डे निधापयेत्।
तुलार्धं दशमूलन्तु तदर्धं पौष्करी जटा॥
तत्समं धन्वयासं च चित्रार्धं च परिक्षिपेत्।
प्रस्थार्धममृता ज्ञेया तदर्धमभया तथा॥
लोध्रकामलकं पथ्यं मंजिष्ठा च कलिद्रुमः।
चव्यं च कुष्ठमधुक कपित्थं सुरदारुकम्॥
क्रमिशत्रुर्मागधिका भार्गी स्यादष्टवर्गकम्।
जीरकं क्रमुको रास्ना शठी रेणुकमेव च॥
शृङ्गी निशा प्रियङ्गुश्च मांसी मुस्ता च सारिवा।
वासा वरी शक्रबीजं नागकेसरमेव च॥
पुननवा समांशानि षड्भिर्द्रोणै र्जलस्य तु।
क्वाथयेदनया रीत्या चतुर्थांशं जलं नयेत्॥
त्रिंशत्पला च मृद्वीका दन्तसंख्यापलं मधु।
गुडस्तुलाचतुष्कं च तदर्धा धातकी भवेत्॥
पलद्वयं लवङ्गानि कङ्कोलं मलयोद्भवम्।

चातुर्जातं तथा कृष्णा मरिचं जातिपत्रकम् ॥
आकल्लकं जातिफलं कपिकच्छुश्चदीप्यकम् ।
वचा खदिरसारश्च दहनं जीरकं तथा ॥
यवानी बालकं विश्वा मुस्ता धान्यं हरीतकी ।
हपुषा तिन्तिडीकं च चूर्णमेषां प्रयोजयेत् ॥
भाण्डे पुराणे सुस्निग्धे धूपिते गन्धभेषजैः ।
कोष्ठसारे तथा तप्ते भूमौ मासं विनिःक्षिपेत् ॥
यं रोगी प्रातरुत्थाय पलमेकं तु भक्षयेत् ।
धातुक्षयं जयेत् कासं श्वासं पञ्चविधं तथा ॥
अर्शांसि वातरोगांश्च ग्रहणीपाण्डुकामलाः ।
हलीमकमुदावर्तं गुल्मं पञ्चविधं जयेत् ॥
आध्मानं कुक्षिशूलं च प्रत्याध्मानं गुदग्रहम् ।
अष्ठीलिकां च हृद्रोगानेतान् व्याधीन् विनिर्जयेत् ॥
कुमार्यासव इत्येषः कथितः शूलपाणिना ॥

क्वाथ्य द्रव्य—घीकार को बिना जल के पका कर १३ सेर रस लें।

दशमूल मिलित २॥ सेर, पोहकरमूल १। सेर, धमासा १। सेर, चित्रकमूल १० छटांक, गिलोय ३२ तोले, हरड़ ३२ तोले, लोध्र, आमला, मजीठ, बहेड़ा, चव्य, कुष्ठ, मुलहठी, कैथ का फल, देवदारु, विडङ्ग, पिप्पली, भारगी, अष्टवर्ग की प्रत्येक औषध श्वेतजीरा, सुपारी, रास्ना, कचूर, संभालू के बीज, काकड़ा सिंगी, हलदी, प्रियङ्गु, जटामांसी, नागरमोथा, सारिवा, वासा, शतावरी, भांग के बीज, नागकेसर, और पुनर्नवा प्रत्येक १६-१६ तोले।

क्वाथ्य जल—१ मन ३६ सेर।

शेष जल—१६ सेर।

मधुर द्रव्य—मधु १ सेर १० छटांक, गुड़ २० सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—मुनक्का १॥ सेर, धावे के फूल १० सेर, लौंग तेजपत्र; नागकेसर, शीतल चीनी, श्वेत चन्दन, छोटी इलायची, दालचीनी, पिप्पली, मरिच, जावित्री, अकरकरा, जायफल, कौंच के बीज अजमोद, वचा, कत्था, चीता, जीरा, अजवायन, नेत्रवाला, सोंठ, नागरमोथा, धनियां, हरड़, हाऊबेर, और तिंतिडीक प्रत्येक ४-४ तोले।

संधानावधि—एक मास।

उपयोग—यह आसव धातुक्षय, कास, श्वास, अर्श, वातरोग, ग्रहणी, पाण्डु, कामला, हलीमक, उदावर्त, गुल्म, अफारा, उदरशूल प्रत्याध्यान, अष्ठीला, एवं हृद्रोग नाशक है।

मात्रा— २॥ से ४ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें। गुड़ ५-५ सेर करके दो वार डालें। शेष में से ५ सेर आसव छानने के वाद डालें। धातकीपुष्प की मात्रा अधिक है; ५ सेर पर्याप्त है। किण्व तीन पाव डालें।

कुमार्यासव

(योगररत्नाकर)

कुमार्याश्च रसद्रोणे गुडं पलशतं तथा ।
तुलांघ्रिसख्यां विजयां क्वाथयेत्तज्जलार्मणे ॥
चतुर्थांशावशेषे तु पूते तस्मिन्निधापयेत् ।
मधुनश्चाढकं दत्वा धातक्या द्विपलाष्टकम् ॥
स्निग्धभाण्डे विनिक्षिप्य कल्कं चैत्र प्रदापयेत् ।
जातीफलं लवङ्गं च कर्कोलं च कवावकम् ॥
जटिला चव्यचित्रं च जातिपत्रीं सकर्कटकम् ।
अक्षं पुष्करमूलञ्च प्रत्येकञ्च पलं पलम् ॥
मृतं शुल्वं तथा लौहं शुक्तिमात्रं प्रदापयेत् ।
भूम्यां वा धान्यराशौ वा स्थापयेद्दिनविंशतिम् ॥
तमुद्धृत्य पिबेन्मात्रां यथा चाग्निबलाबलम् ।
पञ्चकासं तथा श्वासं क्षयरोगं च दारुणम् ॥
उदराणि तथाष्टौ च षडर्शांसि च नाशयेत् ।
वातव्याधिमपस्मारमन्यान् रोगान् सुदारुणान् ॥
जाठरं कुरुते दीप्तं कोष्ठशूलञ्च नाशयेत् ।
गुल्माष्टकं नष्टपुष्पं नाशयेदेकपक्षतः ॥
कुमारिकासवो ह्येष बृहस्पतिविनिर्मितः ॥

औषध द्रव्य—घीकार का रस १३ सेर। हरड़ या भांग १। सेर (१३ सेर जल में पका कर ३। सेर जल शेष रहने पर छान लें)

मधुर द्रव्य—मधु ३ सेर ४ छटांक।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल ६४ तोले; जायफल, लौंग शीतलचीनी, कबाब चीनी, जटामांसी; चव्य, चित्रक, जावित्री; काकड़ासिंगी, बहेड़ा, पोहकरमूल, प्रत्येक ४-४ तोले, ताम्रभस्म एवं लौहभस्म २-२ तोले।

संधानावधि—बीस दिन।

उपयोग—इस आसव में घृतकुमारी प्रधान द्रव्य है। यह पित्तविरेचक, वात-अनुलोमक, मलस्रंसक तथा आर्तव-प्रवर्तक है। यकृत् की निर्बलता के कारण पित्त का स्राव न होने के कारण भोजन का पचन ठीक नहीं होता। जिससे अरुचि, अग्निमान्द्य,मलबन्ध या अतिसार की प्रवृत्ति होती है। कुमार्यासव के प्रयोग से ऐसे रोगियों को लाभ होता है। यकृद्वृद्धि से उत्पन्न शुष्क कास भी इस आसव के सेवन से शीघ्र शान्त होजाती है।

वायु का अनुलोमन तथा मल का उचित मात्रा में स्रंसन करने से अग्निमान्द्य तथा अर्श रोग में इस का व्यवहार होता है।

स्त्रियों के गर्भाशय तथा डिम्ब ग्रन्थियों पर भी इसका प्रभाव होता है। जिन स्त्रियों का मासिक धर्म अल्प और वेदना युक्त होता है उनके लिये यह अत्यन्त उपकारी है। यकृत् को पुष्ट करके रक्त की वृद्धि द्वारा पाण्डु रोग की निवृत्ति और स्त्री के प्रजनन अङ्गों को उत्तेजित करने के कारण यह श्रेष्ठ आर्तव प्रवर्तक है।

छोटे बालकों के लिए भी कुमार्यासव अपचन, मलबन्ध,

आतिसार, कृमि तथा कास प्रभृति रोग में अमृत के समान उपयोगी है।

इसका अधिक मात्रा में उपयोग करने से वृक्क; गवीनियो और मूत्राशय में क्षोभ होता है। प्रवाहिका तथा अन्त्रप्रदाह में भी इसका सेवन हानि कारक है।

अनेक वैद्य इस आसव के पाठ में विजया शब्द से भांग का ग्रहण करते हैं। भांग के योग से इसमें वात का शमन करने का गुण बढ़ जाता है। जिससे अजीर्ण, संग्रहणी, आमातिसार तथा उदरशूल को दूर करने में यह विशेष हितकर होता है। रक्तप्रदर, कष्टार्तव, रजोलोप तथा रक्तार्श में इसका प्रयोग होता है। यह वातिक आक्षेपों को शान्त करता है तथा निद्रा लाने में सहायक होता है। मात्रा १। से २॥ तोला।

विशेष द्रष्टव्य—कुमार्यासव के अनेक योगों में से इस का प्रचलन अधिक है। इसमें मधुर द्रव्यों का परिमाण न्यून है। अतः प्रथम लिखे हुए परिमाण में मधु या गुड़ डालें। उसके मद्य में रूपान्तरित होजाने पर इतना ही मधु या गुड़ पुनः मिलाएं। किण्व दस छटांक डालें।

चविकासव

(गदनिग्रह)

तुलार्धं चविकायास्तु तदर्धं चित्रकस्य च।
वाशिका पौष्करमूलं षड्ग्रन्था हपुषा शठी॥

पटोलमूल त्रिफला यवानी कुटजत्वचः ।
विशाला धान्यकं रास्ना दन्ती दशपलोन्मिता ॥
कृमिघ्न मुस्त मञ्जिष्ठा देवदारु कटुत्रिकात् ।
भागान् पञ्च पलानेतानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥
द्रोणशेषे सुशीते च देयं गुडशतत्रयम् ।
धातक्या विंशतिपलं चातुर्जातपलाष्टकम् ॥
लवङ्ग व्योष कङ्कोलं पलिकानि प्रकल्पयेत् ।
निदध्यान्मासमेकं तु घृतभाण्डे सुसंस्कृते ॥
चतुः पलां पिबेन्मात्रां प्रातः पीतो नियच्छति ।
सर्वान् गुल्मविकारांश्च प्रमेहांश्चैव विंशतिः ॥
प्रतिश्यायं क्षयं कासमष्ठीलां वातशोणितम् ।
उदराण्यन्त्रवृद्धिं च चविकारव्यो महासवः ॥

क्वाथ्यद्रव्य—चव्य २॥ सेर, चित्रक १। सेर, हिंगुपत्री, पोहकरमूल, वचा, हाऊवेर, कचूर, पटोलमूल, हरड़, बहेड़ा, आमला, अजवायन, कूड़े की छाल, इन्द्रायण, धनियां, रास्ना, दन्तीमूल, प्रत्येक आध २ सेर; वायविडङ्ग, नागरमोथा, मजीठ, देवदारु, पिप्पली, सोंठ, मरिच, प्रत्येक २०-२० तोले।

क्वाथ्य जल—२ मन २४ सेर। शेष—१३ सेर।

मधुरद्रव्य—गुड १५ सेर।

प्रक्षेपद्रव्य—धावे के फूल १ सेर, चातुर्जातक मिलित ३२ तोले, लौंग, त्रिकटु मिलित, शीतलचीनी प्रत्येक ४-४ तोले।

सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग—यह पाचक, दीपक, अग्निवर्धक तथा वात नाशक है। मल का स्रंसन नहीं करता। कुमार्यासव मलबन्ध सहित गुल्म, उदावर्त, उदररोग तथा रजोऽल्पता आदि में प्रशस्त रहता है। चविकासव मलभेद सहित गुल्म, उदावर्त तथा उदर रोगों में उपयोगी है। रजः स्राव तथा पित्तस्राव पर इस आसव का विशेष प्रभाव नहीं। मात्रा ग्रन्थकार ने १६ तोले लिखी है; परन्तु २-४ तोले तक उचित है।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें। गुड़ ५-५ सेर करके दो बार मिलाए; शेष ५ सेर आसव को छानने के पश्चात् मिलाएं। किण्व आध सेर डालें।

वृश्चीराद्यरिष्ट

(सुश्रुतसंहिता; चक्रदत्त)

वृश्चीरमुरुबूकञ्च वर्षाह्वं बृहतीद्वयम।
चित्रकञ्च जलद्रोणे पचेत् पादावशेषितम्॥
मागधी चित्रक क्षौद्र लिप्त कुंभे निधापयेत्।
मधुनः प्रस्थमावाप्य पथ्याचूर्णार्धसंयुतम्॥
व्युषाषितं दशाहञ्च जीर्णभक्तः पिबेन्नर।
अरिष्टोऽयं जयेद् गुल्ममविपाक सुदुस्तरम्॥

क्वाथ्य द्रव्य—श्वेत पुनर्नवा, एरण्डमूल, लाल पुनर्नवा, छोटी कटहली, बड़ी कटहली, चित्रक सब मिलित ५ सेर।

क्वाथ्य जल—१३ सेर। शेष—३ सेर ४ छटांक।

मधुर द्रव्य—मधु ६४ तोले।

प्रक्षेप द्रव्य—हरड़ का चूर्ण ३२ तोले।

संधानावधि--दस दिन।

उपयोग—यह अग्निमान्द्य, अपचन तथा गुल्म नाशक है। मात्रा २ से ४ तोले।

विशेष द्रष्टव्य— ६४ तोले मधु आसवीय घोल में प्रारंभ में मिलाएं। घोल में संधान होने पर मिठास अतिन्यून रह जाए तो इतना ही मधु या पुराना गुड़ और मिलाएं। धावे के फूल ८ तोले और किण्व आध सेर डालें।

उदररोगाधिकार

करञ्जारिष्ट

(अष्टाङ्ग हृदय)

द्रोणेऽपां पूतिवल्क द्वितुलमथ पचेत्पादशेषे च तस्मिन् ।
देयार्शोतिगुडस्य प्रतनुकरजसो व्योषतोऽष्टौ पलानि ॥
एतन्मासेन जातं जनयति परमामुष्मणः पक्तिशक्तिम् ।
शुक्तं कृत्वानुलोम्यं प्रजयति गुदज प्लीह गुल्मोदराणि ॥

क्वाथ्य द्रव्य—करञ्ज की छाल या मूल १० सेर ।

क्वाथ्य जल— १२ सेर । शेष—३ सेर ।

मधुर द्रव्य—गुड़ ४ सेर ।

प्रक्षेप द्रव्य—त्रिकटु ३२ तोले ।

सन्धानावधि—एक मास ।

उपयोग—यह अरिष्ट अग्निदीपक, पित्तशामक और वातानुलोमक है । अर्श, गुल्म तथा प्लीहोदर आदि में प्रशस्त है ।

मात्रा-१। से २॥ तोले ।

विशेष द्रष्टव्य—जल की मात्रा द्विगुण लें, उसमें पञ्चमांश अर्थात् एक सेर गुड़ मिला कर सधान करें। आसवीय घोल में संधान से मिठास कम हो जाने पर एक सेर गुड़ और मिलाएं। शेष गुड़ आसव को मीठा करने के लिए संधान पूर्ण हो चुकने पर मिला सकते हैं। किण्व एक पाव डालें।

करञ्जाद्यरिष्ट

(अष्टाङ्ग हृदय)

पचेत्तुलां पूतिकरंजवल्कलाद् द्वे मूलतश्चित्रककण्टकार्य्योः ।
द्रोणत्रयेऽपां चरणावशेषे पूते शतं तत्र गुडस्य दद्यात् ॥
पलिकञ्च सुचूर्णितं त्रिजात त्रिकटुग्रन्थिक दाड़िमाश्मभेदम् ।
परपुष्करमूल धान्य चव्यं हवुषामार्द्रकमम्लवेतसञ्च ॥
शीतीभूतं क्षौद्रविंशत्युपेतमार्द्रद्राक्षा बीजपूरार्द्धकैश्च ।
युक्तं कामं गण्डकाभिस्तथेक्षोः सर्पिः पात्रे मासमात्रेणजातम् ॥
चुक्रं क्रकचमिवेदं दुर्नाम्नां वह्निदीपनं परमम् ।
पाण्डु गरोदर गुल्म प्लीहानाहाश्मकृच्छ्रघ्नम् ॥

क्वाथ्य द्रव्य—करंज की छाल, चित्रकमूल और छोटी कटहली प्रत्येक ५ सेर।

क्वाथ्य जल—३६ सेर। शेष—६॥। सेर।

मधुर द्रव्य—गुड़ ५ सेर, मधु १ सेर।

प्रक्षेपद्रव्य—त्रिजातक, त्रिकटु, पिप्पलीमूल, अनारदाना पाषाणभेद, पुष्करमूल, धनिया, चव्य, हपुषा, अदरक, अम्ल-

वेतस प्रत्येक ४ तोले; ताजे बड़े अंगूर, विजौरा और गन्ने की गण्डेरियां प्रत्येक ४० तोले ।

संधानावधि—एक मास ।

उपयोग—प्रथम करञ्जारिष्ट के समान यह भी अग्निदीपक, पित्तशामक तथा वातानुलोमक है । अर्श, गुल्म, पेट का अफरना प्लीहा आदि-उदर रोग, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी रोग में प्रशस्त है । मात्रा-१। से २॥ तोले ।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें । तीन सेर गुड़ और एक सेर मधु प्रारंभ में मिलाएं इतना ही मीठा आसव के घोल में मिठास न रहने पर दुबारा मिलाना चाहिये । किण्व तीन पाव डालें ।

कुमार्यासव

(सिद्धभेषजमणिमाला)

कन्यारसाढके प्रत्नगुड़तः कुडवद्वयम् ।
मण्डूरं टङ्कणं क्षारं पञ्चैव लवणानि च ॥
नवसादर इत्यस्माद् वर्गाद्यं पल पलम् ।
काचकोषे समाधाय मुखमस्य विमुद्रयेत् ॥
अष्टाहमातपन्यस्तमेकीभूतरसं पिबेत् ।
यकृत् प्लीहोदरेष्वेवं कुमार्यासवमाख्यया ॥

औषधद्रव्य—घीकार का रस ३ सेर ४ छटांक ।

शुद्ध मण्डूर, सुहागाखील, सर्जक्षार, पांचों नमक, और नौसादर प्रत्येक ४-४ तोले।

मधुर द्रव्य—पुराना गुड़ ३२ तोले।

सन्धानावधि—आठ दिन धूपमें रखें। औषधियों के कुमारीरस में विलीन होजाने पर छान कर बोतलों में भरलें।

उपयोग—यह आसव यकृत्, प्लीहा के विविध विकारों तथा उदर रोगों में अति प्रशस्त है। मात्रा १। तोला।

रोहीतकासव

(गर्दानग्रह)

रोहीतकशतमेकं क्वथितं द्रोणे चतुर्थशेषे तु।
तस्मिन् गुडशतमेकं योज्य शेषः सुचूर्णितैरेभिः॥
पलमेकं त्रिफलायाः देयं त्रिपलं च धातकीपुष्पात्।
पलिकञ्च पञ्चकोलाद् घृतभाण्डे स्थापयेत् पक्षम्॥
ज्वरगुल्मार्शः प्लीहरुगस्थिग्रह पाण्डु रोगघ्नः॥

क्वाथ्य द्रव्य—रोहीतक की छाल ५ सेर।

क्वाथ्य जल—१३ सेर। शेष जल—३। सेर।

मधुर द्रव्य—गुड़ ५ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—हरड़, बहेड़ा, आमला ४-४ तोले, धावे के फूल १२ तोले, पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक और सोंठ, प्रत्येक ४-४ तोले।

संधानावधि--पन्द्रह दिन।

उपयोग—यह आसव प्लीहावृद्धि, ज्वर, गुल्म, अर्श, हड्डियों की जकड़ाहट और पांडु रोग नाशक है ! मात्रा १। से २॥ तोला।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें। गुड़ पंचमांश दो तीन बार मिलाएं। किण्व १ पाव डालें।

रोहीतकारिष्ट

(भैषज्य रत्नावली)

रोहीतकतुलामेकां चतुर्द्रोणे जले पचेत्।
पादशेषे रसे पूते शीते पलशतद्वयम् ॥
दद्याद् गुडस्य धातक्याः पलषोडशिका मता।
पञ्चकोलं त्रिजातञ्च त्रिफलाञ्च विनिक्षिपेत् ॥
चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत्।
मासादूर्ध्वञ्च पिवतां सर्वोदररुजां जयेत् ॥
प्लीहगुल्मोदराष्ठीला ग्रहण्यर्शांसि कामलाम्।
कुष्ठशोफारुचिहरो रोहितारिष्टसंज्ञितः ॥

क्वाथ्य द्रव्य—रुहेड़े की छाल ५ सेर।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर। शेष जल--१३ सेर।

मधुर द्रव्य—गुड १० सेर।

प्रक्षेप द्रव्य--धावे के फूल ६४ तोले, पंचकोल, त्रिजातक और त्रिफला का प्रत्येक द्रव्य ४-४ तोले।

सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग—यह अरिष्ट जीर्णज्वर, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अरुचि, ग्रहणी, अर्श, कामला, कुष्ठ, शोथ तथा अष्ठीला नाशक है। मात्रा १। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें। गुड़ ५-५ सेर दो बार करके मिलाएं। किण्व १ सेर डालें।

गदनिग्रह में रोहितकासव नाम से इस का पाठ है; परन्तु प्रक्षेप द्रव्यों में त्रिफला का विधान नहीं है और संधानावधि पन्द्रह दिन लिखी है। भैषज्यरत्नावली का योग अधिक प्रचलित है।

रोहीतकासव

(गदनिग्रह)

तुलाद्वयं रोहितमूलकानां द्विद्रोणमात्रेण जलेन पक्त्वा ।
क्षेप्यं गुडस्य द्विशतं पलानामष्टादश स्युस्त्रिफलापलानि ॥
लवङ्ग जातीफल धातकीनां पलानि लोहस्य षडेव दद्यात् ।
देयं चतुर्जातक पंचकोलं पृथक् पृथक् पञ्चपलं तथैव ॥
गुल्म ज्वरारोचक हृद् विकार भगन्दर प्लीह निपीडितानाम्।
रक्तामय श्वासनिपीडितानां सदासवोऽयं विधिना प्रयोज्यः॥

क्वाथ्य द्रव्य—रुहेड़े की जड़ अथवा छाल १० सेर।

क्वाथ्य जल—२६ सेर। शेष जल—६ सेर ८ छटांक।

मधुर द्रव्य—गुड़ १० सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—त्रिफला मिलित १४॥ छटांक, लौंग, जायफल धावे के फूल और लोहभस्म प्रत्येक २४-२४ तोले; चातुर्जातक मिलित और पंचकोल मिलित २०-२० तोले।

संधानावधि—एक मास।

उपयोग—यह प्लीहावृद्धि, गुल्म, जीर्णज्वर, अरुचि, हृद्रोग, भगन्दर, रक्तविकार तथा श्वासरोग नाशक है। मात्रा—१। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें। गुड़ २॥-२॥ सेर करके तीन बार मिलाना पर्याप्त है। किण्व २ सेर मिलाएं।

रोहीतकासव के इन सब योगों में भैषज्यरत्नावलि का रोहीतकारिष्ट अधिक प्रचलित है।

शोथाधिकार

अष्टशतारिष्ट

(चरकसंहिता: गदनिग्रह)

काश्मर्यधात्री मरिचाभयाक्षद्राक्षा फलानां तु सपिप्पलीनाम् ।
शतं शतं जीर्णगुडात्तुलां च संक्षुद्य कुंभे मधुना प्रलिप्त ॥
सप्ताहमुष्णे द्विगुणं तु शीते स्थितं जलद्रोणयुतं पिबेत्ता ।
शोफान् विबन्धान् कफवातजांश्च सहन्त्यारिष्टोऽष्ट शतोऽग्निकृच्च ॥

औषध द्रव्य--गंभारीफल, आमला, मरिच, हरड़, बहेड़ा, मुनक्का और पिप्पली मिलित ५ सेर ।

जल--१३ सेर ।

मधुर द्रव्य—गुड ५ सेर ।

सन्धानावधि—ग्रीष्म ऋतु में सात दिन; शीत काल में चौदह दिन ।

उपयोग यह अग्निदीपक और कफ तथा वायुनाशक है । मलबन्ध और शोथ में उपयोगी है । मात्रा १। से २॥ तोले ।

विशेष द्रष्टव्य--जल द्विगुण करें। इस में मीठा कम है, अतः ५ सेर गुड़ प्रारंभ में और इतना ही संधान से मिठास कम हो जाने पर डालें। किण्व १ सेर डालें।

गण्डीराद्यरिष्ट

(चरक संहिता)

गण्डीर भल्लातक चित्रकांश्च व्योष विडङ्गं बृहतीद्वयञ्च।
द्विप्रस्थिकं गोमयपावकेन द्रोणे पचेत् कूर्चिकमस्तुनस्तु॥
त्रिभागशेषं च सुपूतशीतं द्रोणेन तत्प्राकृतमस्तुना च।
सितापलायाश्च शतेनयुक्तं लिप्ते घटे चित्रक पिप्पलीनाम्॥
वैहायसे स्थापितमादशाहात् प्रयोजयंस्तद् विनिहन्ति शोफान्।
भगन्दराशः कृमिकुष्ठ मेहान् वैवर्ण्यकार्श्यानिलहिक्कनंच॥

क्वाथ्य द्रव्य-- सेहुण्ड, भिलावा, चित्रकमूल, पिप्पली, सोंठ, मरिच, विडङ्ग, छोटी तथा बड़ी कटहला, सब समभाग मिलित १ सेर १० छटांक।

क्वाथ्य द्रव्य--कूर्चिक मस्तु (६॥ सेर दही और ६॥ सेर जल मिलाकर मथ लें) १३ सेर; उपलों की आग पर पकाएं और ९ सेर शेष रहने पर उतार कर छान लें। प्राकृत मस्तु अर्थात् दही का पानी १३ सेर।

मधुर द्रव्य--मिश्री ५ सेर।

संधानावधि-दस दिन धूप में रखें।

उपयोग--यह अरिष्ट शोथ, भगन्दर, वाताशं, कृमि, कुष्ठ,

प्रमेह, विवर्णता, कृशता, वातरोग तथा हिक्का में उपकारी है। पित्त प्रधान व्यक्तियों को इसका सेवन न करना चाहिए।

मात्रा—१ से २ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—कूर्चिकमस्तु में ओषधियां डालकर क्वाथ करते समय उसकी वाष्प शरीर को न लगे; इसका ध्यान रखना चाहिये। पात्र में चित्रकमूल और पिप्पली का लेप करें।

पुनर्नवासव

(भैषज्य रत्नावली)

त्रिकटु त्रिफला दार्वी श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम्।
वासामैरण्डमूलञ्च कटुकीं गजपिप्पलीम्॥
शोथघ्नीं पिचुमर्दञ्च गुडूचीं शुष्कमूलकम्।
दुरालभां पटोलं च पलांशेन विचूर्णयेत्॥
धातकीं षोडशपलां द्राक्षायाः पलविंशतिम्।
तुलामानां सितां दत्वा माक्षिकार्धतुलां तथा॥
जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा मासं भाण्डे निधापयेत्।
पुनर्नवासवो ह्येष शोथोदर विनाशनः॥
प्लीहामम्लपित्तञ्च यकृद् गुल्म ज्वरादिकान्।
कृच्छ्रसाध्यामयान् सर्वान् नाशयेन्नात्रसंशयः॥

औषध द्रव्य—सोंठ, काली मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आमला, दारुहलदी, गोखरू, छोटी तथा बड़ी कटहली, वासा, एरण्डमूल, कुटकी, गजपिप्पली, पुनर्नवा, नीम की छाल,

गिलोय, सूखी मूली, धमासा, पटोलपत्र, प्रत्येक ४ तोले; धावे के फूल ६४ तोले; मुनक्का ८० तोले।

जल—२६ सेर।

मधुर द्रव्य—चीनी ५ सेर; मधु २॥ सेर।

सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग—उत्तम मूत्रल और हृद्य होने के कारण इस आसव का हृदय यकृत्, प्लीहा और वृक्कों पर विशेष प्रभाव होता है। इनमें से किसी के भी विकार से उत्पन्न शोथ को यह दूर करता है। शोथ तीव्र रूप में हो तो इस के साथ सारिवाद्यासव मिला देना चाहिये।

इसी प्रकार यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, अम्लपित्त, गुल्म, ज्वर और उदररोग आदि कष्ट साध्य रोगों में भी इसके प्रयोग से असंदिग्ध सफलता होती है। मात्रा– १। से २॥ तोला।

विशेष द्रष्टव्य—आसव के घोल में पहिले केवल ५ सेर चीनी डालें, संधान प्रारंभ हो जाने पर जब मिठास अति न्यून रह जाय तो २॥ सेर चीनी एवं २॥ सेर मधु और मिलाएं। संधान पूर्ण हो जाने पर इसे रोचक बनाने के लिए ५ सेर तक चीनी और मिला सकते हैं। किण्व १ सेर डालें।

पुनर्नवासव

(चरकसंहिता, गदनिग्रह; योगरत्नाकर)

पुनर्नवे द्वे च पले सपाठे दन्ती गुडूची सह चित्रकेण।
निदिग्धिका च त्रिपलानि पक्त्वा द्रोणावशेषे सलिले ततस्तु।
पूत्वा रसं द्वे च तुले पुराणाद् गुडान्मधु प्रस्थयुतं सुशीतम्

मासं निदध्याद् घृतभाजनस्थं पल्ले यवानां परतश्च मासात् ॥
चूर्णीकृतैरर्धपलांशकैस्तं हेमत्वगेला मरिचाम्बु पत्रैः।
गन्धान्वितं क्षौद्रघृतप्रदिग्धं जीर्णे पिबेद् व्याधिबलं समीक्ष्य।
हृत्पाण्डु रोगं श्वयथुं प्रवृद्धं प्लीह भ्रमारोचक मेह गुल्मान्।
भगन्दरार्शो जठराणि कासश्वास ग्रहण्यामय कुष्ठ कण्डूः ॥
शाखानिलं बद्धपुरीषतांञ्च हिक्कां किलासं च हलीमकं च।
क्षिप्रं जयेद् वर्णबलायुरोजस्तेजोन्वितो मांसरसान्नभोजी ॥

क्वाथ्य द्रव्य—दोनों पुनर्नवा, पाठा, दन्तीमूल, गिलोय, और चित्रक प्रत्येक ८ तोले; छोटी कटहली १२ तोले।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर।

शेष जल—१३ सेर।

मधुर द्रव्य—पुराना गुड़ १० सेर; शहद ६४ तोले।

प्रक्षेप द्रव्य—नागकेसर, दालचीनी; छोटी इलायची, मरिच, नागरमोथा और तेजपत्र प्रत्येक २-२ तोले।

संधानावधि—एक मास।

उपयोग--यह हृदयरोग, पाण्डु, शोथ, प्लीहावृद्धि, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, अर्श, उदर रोग, कास, श्वास, ग्रहणी, कुष्ठ, कण्डु, शाखास्थित वायु, मलबन्ध, हिचकी, हलीमक आदि रोगों का नाश कर बल, वर्ण, आयु और ओज तथा तेज की वृद्धि करता है। मात्रा १। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य--जल द्विगुण लें। गुड़ तथा शहद आधा आधा करके दो बार में मिलाए। किण्व १ सेर एवं धातकीपुष्प ६१ तोले डालें।

वासकासव

(गदनिग्रह)

वासकस्य तुले द्वे तु द्विद्रोणेऽपां विपाचयेत् ।
द्रोणार्धशेषं तत् कृत्वा पूते शीते प्रदापयेत् ॥
गुडस्यैकां तुला तत्र धातक्यास्तु पलाष्टकम ।
क्षिपेच्चूर्णीकृतं तस्मिन् त्वगेला पत्र केसरम् ॥
कङ्कोल व्योष तोयानि पलिकान्युपकल्पयेत् ।
सम्यक् पक्वं ततो ज्ञात्वा पश्चादूर्ध्वं पिवेदमुम् ॥
वासकासव इत्येष सर्वश्वयथुनाशनः ॥

काथ्य द्रव्य—वासा का पञ्चांग १० सेर ।
काथ्य जल—२५ सेर १० छटांक ।
शेष जल—६ सेर ६ छटांक ।

मधुर द्रव्य—गुड़ ५ सेर ।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल ३२ तोले, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेसर, शीतलचीनी, पिप्पली, सोंठ, मरिच, और सुगन्धवाला प्रत्येक ४ तोले ।

संधानावधि—पन्द्रह दिन ।

उपयोग—यह शोथनाशक है । मात्रा १। से २॥ तोले ।

विशेष द्रष्टव्य— जल द्विगुण लें, गुड़ आधा आधा करके दो वार में मिलाएं । किण्व आध सेर डालें ।

त्रिफलाद्यरिष्ट

(चरकसंहिता, गदनिग्रह)

फलत्रिकं दीप्यकचित्रकौ च सपिप्पलीलोहरजो विडङ्गम् ।
चूर्णीकृतं कौडविकं द्विरंशं क्षौद्रं पुराणस्य तुलां गुडस्य ॥
मासं निदध्याद् घृतभाजनस्थं यवेषु तानेव निहन्ति रोगान् ॥

औषध द्रव्य—हरड़, बहेड़ा, आमला जीरा, चित्रक, पिप्पली, लोह भस्म, और विडङ्ग प्रत्येक १६ तोले ।

जल—८ सेर ।

मधुर द्रव्य—पुराना गुड़ ५ सेर; शहद ३२ तोले ।

संधानावधि—एक मास ।

उपयोग—यह अग्निदीपक रक्तवर्धक और शोथनाशक है । मात्रा १। से २॥ तोले ।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें। गुड़ तथा शहद आधी आधी मात्रा में दो बार करके मिलाएं । धावे के फूल १२ तोले और किण्व आध सेर मिलाएं ।

हृद्रोगाधिकार

पार्थाद्यरिष्ट

(भैषज्यरत्नावली)

पार्थस्यचस्तुलामेकां मृद्वीकार्धतुलां तथा ।
भागं मधूकपुष्पस्य पलविंशति सम्मितम् ॥
चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणमेवावशेषयेत् ।
धातक्या विंशतिपलं गुडस्य च तुलां क्षिपेत् ॥
मासमात्रं स्थितो भाण्डे भवेत् पार्थाद्यरिष्टकः ।
हृत् फुफ्फुस गदान् सर्वान् हन्त्ययं बल वीर्यकृत् ॥

क्वाथ्य द्रव्य—अर्जुन छाल ५ सेर; मुनक्का २॥ सेर, महुए के फूल १ सेर ।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर ।

शेष जल—१३ सेर ।

मधुर द्रव्य—गुड ५ सेर ।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल १ सेर।

संधानावधि—एक मास।

उपयोग—इस अरिष्ट का प्रचलित नाम अर्जुनारिष्ट है। यह हृदय के लिए अति उपयोगी है। यह पित्तप्रधान हृदय रोग और फेफड़ों की सूजन से फूली हुई शिथिल श्वासवाहिनियों को संकुचित और दृढ़ बना कर कमज़ोरी दूर करता है; तथा शरीर में बल बढ़ाता है। मात्रा-१॥-२॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—गुड आधा-आधा करके दो बार में मिलाएं। किण्व आध सेर मिलाएं।

प्रमेहाधिकार

अभयारिष्ट

(गदनिग्रह)

पलाष्टकांशा वर्षाभूदशमूलार्कचित्रकाः ।
दन्ती श्यामात्रिवृद्रास्नाश्चैवं स्युस्त्रिफलाढकाः ॥
अम्बुद्रोणाष्टके पक्का पादशेषे रसे हृते ।
द्वे गुडस्य तुले पूते तत्रश्चात् घटके क्षिपेत् ॥
गवां मूत्राढकं, प्रस्थौ द्वावयोरजसस्तथा ।
विडङ्गं कुटजं कुष्ठं चित्रकं मरिचं वचा ॥
संचूर्ण्य द्विपलान्यस्मिन् दत्त्वा मासस्थितं भवेत्।
आभयोऽयमरिष्टेन्द्रो मेहाशः कुष्ठशोफहा ॥
लोहपाण्डवामयान् गुल्मान् जठराणि च नाशयेत् ॥

क्वाथ्य द्रव्य—पुनर्नवा, दशमूल मिलित, अर्कमूल, चित्रक, दन्तीमूल, काली निशोथ, त्रिवृत्, रास्ना, प्रत्येक ३२ तोले, त्रिफला मिलित ३ सेर ४ छटांक।

क्वाथ्य जल—२ मन २४ सेर।

शेष—२६ सेर।

मधुर द्रव्य--गुड़ १० सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—गोमूत्र ३ सेर ४ छटांक, लौहचूर्ण १ सेर-१० छटांक, बिडङ्ग, कूड़े की छाल, कुष्ठ, चित्रक, मरिच, और वचा प्रत्येक ८ तोले।

सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग—यह अरिष्ट वातशामक, अग्निदीपक, मलमूत्र-प्रवर्तक, यकृत् शोधक और रक्त वर्धक है। प्रमेह, बवासीर और ग्रहणी रोगों में उपयोगी है। मात्रा- २ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—गुड़ को पांच पांच सेर करके दो बार में डालें। सन्धान के लिए धातकीपुष्प १६ तोले तथा सुराबीज १ सेर मिलाए।

लौहचूर्ण को शुद्ध करके दो तीन दिन त्रिफला चूर्ण और जल में मिला कर रखें; फिर डालें।

चन्दनासव

(भैषज्य रत्नावली)

चन्दनं बालकं मुस्तं गाम्भारीं नीलमुत्पलम्।
प्रियङ्गुं पद्मकं लोध्रं मंजिष्ठां रक्तचन्दनम्॥
पाठां किराततिक्तञ्च न्यग्रोधं पिप्पलीं शठीम्।
पर्पटं मधुकं रास्ना पटोलं काञ्चनारकम्॥
आम्रत्वच मोचरसं प्रत्येकं पलसम्मितम्।

धातकीं षोडशपलां द्राक्षायाः पलविंशतिम् ॥
जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा शर्करायास्तुलां तथा ।
गुडस्यार्धतुलाञ्चापि मासं भाण्डे निधापयेत् ॥
चन्दनासव इत्येष शुक्रमेह विनाशनः ।
बलपुष्टिकरो हृद्यो वन्हिसंदीपनः परः ॥

औषध द्रव्य—श्वेतचन्दन, नेत्रबाला, नागरमोथा, गंभारी नीलोफर, प्रियङ्गु, पद्माक, लोध्र, मजीठ, लालचन्दन, पाठा, चिरायता, वड़ की छाल, पिप्पली, कचूर, पित्तपापड़ा, मुलहठी, रास्ना, पटोलपत्र, कचनार की छाल, आम की छाल, और सेमल की गोंद, प्रत्येक ४ तोले; धावे के फूल ६४ तोले, मुनक्का १ सेर ।

जल—२५ सेर १० छटांक ।

मधुर द्रव्य—चीनी ५ सेर; गुड़ २॥ सेर ।

सन्धानावधि—एक मास ।

उपयोग—यह आसव तिक्त रस, शीतवीर्य और पित्त-शामक होने से उत्तम मूत्रल, दाह शामक, हृद्य और बल्य है । मूत्र मार्ग के दोषों को नष्ट करता है । यह उष्णवात (सूज़ाक) की उत्तम औषध है । इसके सेवन से उष्णवात का विष नष्ट होता है और वह मूत्र द्वारा शरीर से निकलता रहता है ।

इस आसव से अश्मरी (पथरी) के छोटे छोटे कण द्रवरूप हो कर बाहिर निकल जाते हैं । अश्मरीजन्य शूल में भी इसका उपयोग किया जाता है ।

साधारणतया उष्णवात, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात शुक्रमेह

तथा अश्मरी में इस आसव का सफलता के साथ प्रयोग होता है। मात्रा १॥-२॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—आसव के घोल में प्रथम बार केवल ५ सेर चीनी डालें; उसके आसव में परिवर्तित हो जाने पर २॥ सेर गुड़ डालें; संधान पूर्ण हो जाने पर इसे छान कर २॥ सेर चीनी या गुड़ और मिलाएं। किण्व १ सेर डालें।

देवदार्वासव

(गदनिग्रह)

देवदारु तुलार्धं तु वासायाः पलविंशतिः।
शक्राह्वदन्तीमंजिष्ठास्तगर रजनीद्वयम् ॥
रास्ना मुस्तं शिरीषं च कृमिघ्नं खदिरार्जुनौ।
भागान् दशपलान् कृत्वा गुडूच्याश्चित्रकस्य च ॥
चन्दनस्य यवान्याश्च रोहिण्या वत्सकस्य च।
भागान् पञ्च पलानेतानष्ट द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥
द्रोणशेषे कषाये तु पूते शीते प्रदापयेत्।
धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम् ॥
चतुः पलं त्रिजाताच्च व्योषस्य च पलद्वयम्।
पलद्वयं केसरस्य प्रियङ्गोश्च पलद्वयम् ॥
घृतभाण्डे निदध्याच्च मासमेकं प्रयत्नतः।
प्रमेहान् मूत्रकृच्छ्रांश्च वातरोगान् सुदारुणान् ॥
ग्रहण्यर्शोविकारांश्च देवदार्वासवो जयेत् ॥

क्वाथ्य द्रव्य--देवदारु २॥ सेर, वासा १ सेर; इन्द्रजौं, दन्तीमूल, मजीठ, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, मोथा, सिरस की छाल, विडङ्ग, खैर छाल, अर्जुनछाल, प्रत्येक आध-आध सेर; गिलोय, चित्रक, श्वेतचन्दन, अजवायन, कुटकी, और कूड़े की छाल, प्रत्येक २० तोले।

क्वाथ्य जल--२ मन २४ सेर।

शेष जल--१३ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य--धावे के फूल ६४ तोले, त्रिजातक मिलित ४८ तोले, त्रिकटु मिलित २४ तोले, नागकेसर ८ तोले, और प्रियङ्गु ८ तोले।

सन्धानावधि-एक मास।

उपयोग - यह आसव प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, वातरोग, ग्रहणी, अर्श आदि को दूर करता है। मात्रा - १॥ से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य - जल द्विगुण लें। मधु पांच-पांच सेर करके तीन बार में मिलाएं। किण्व आध सेर डालें।

देवदार्वाद्यरिष्ट

(शार्ङ्गधरसंहिता; भैज्यरत्नावली)

तुलार्धं देवदारु स्याद् वासायाः पलविंशतिः।
मंजिष्ठेन्द्रयवो दन्ती तगरं रजनीद्वयम् ॥
रास्ना कृमिघ्नं मुस्तञ्च शिरीषं खदिरार्जुनौ।
भागान् दशपलान् दद्याद् यमान्या वत्सकस्य च ॥

चन्दनस्य गुडूच्याश्च रोहिण्याश्चित्रकस्य च ।
भागानष्टपलानेतानष्ट द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥
द्रोणशेषे कषाये च पूते शीते प्रदापयेत् ।
धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम् ॥
व्योषस्य द्विपलं दद्यात् त्रिजातक चतुः पलम् ।
चतुः पलं प्रियङ्गोश्च द्विपलं नागकेशरम् ॥
सर्वाण्येतानि संचूर्ण्य घृतभाण्डे निधापयेत् ।
मासादूर्ध्वं पिवेदेनं प्रमेहं हन्ति दुस्तरम् ॥
वातरोगग्रहण्यर्शो मूत्रकृच्छ्राणि नाशयेत् ।
देवदार्वादिकोऽरिष्टो दद्रु कुष्ठ विनाशनः ॥

कष्यद्रव्य—देवदारु २॥ सेर, वासा १ सेर; मजीठ, इन्द्रजौं, दन्तीमूल, तगर, हलदी, दारुहलदी, रास्ना, विडङ्ग, नागरमोथा, सिरस की छाल, खैर छाल, अर्जुनछाल, प्रत्येक आध आध सेर; अजवायन, कूड़े की छाल, श्वेतचन्दन, गिलोय, कुटकी, और चित्रक, प्रत्येक ३२ तोले।

कष्य जल—२ मन २४ सेर।

शेष जल— १३ सेर।

मधुर द्रव्य—मधु १५ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल ६४ तोले, त्रिकटु मिलित ८ तोले, त्रिजातक मिलित १६ तोले, नागकेसर ८ तोले; और प्रियङ्गु १६ तोले।

संधानावधि—एक मास।

उपयोग—इसके सेवन से वातरोग, प्रमेह, उपदंश उष्णवात या पूयमेह तथा उपदंश एवं फिरंग आदि के परिणाम स्वरूप होने वाले मूत्रकृच्छ्र, गर्भाशयदोष, कंडू, कुष्ठ इत्यादि रोग दूर होते हैं। यह अरिष्ट उत्तम रक्तशोधक, पाचक दीपक, तथा मलशोधक होने के कारण ग्रहणी तथा अर्श में लाभदायक है। फिरंग आदि विकारों के कारण होने वाले विविध रक्त दोषों के साथ ग्रहणी या अर्श होने पर इस अरिष्ट का सेवन करना चाहिए।

प्रसूतावस्था में ज्वर हो और स्राव में रुकावट हो, या गर्भाशय में शूल हो तो यह अरिष्ट देना चाहिए। जीर्ण सूतिका रोग में भी यह लाभदायक है। मात्रा-१। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—गदनिग्रह के देवदार्वासव से इसमें थोड़ा भेद है। उसमें अजवायन, कूड़े की छाल, श्वेत चन्दन, गिलोय कुटकी तथा चित्रक का मान २०-२० तोले और प्रियङ्गु का ८ तोले है।

निर्माण में जल द्विगुण लें, और मधु पांच पांच सेर करके तीन बार में मिलाएं। किण्व १ सेर डालें।

मध्वासव

(गदनिग्रह)

विशालातिविषा भार्गी कुष्ठ मुस्ता प्रियङ्गवः।
विडङ्ग त्रिफला कृष्णा चव्य ग्रन्थिक दीप्यकाः॥
अष्टांशान् सलिलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषिते।

दत्त्वा तदर्धं क्षौद्रं हि स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥
एष मध्वासवो हन्ति मेहं द्विपल योजितः ॥

क्वाथ्य द्रव्य—इन्द्रायण, अतीस, भारङ्गी, कूठ, नागरमोथा, प्रियङ्गु, विडङ्ग, हरड़, बहेड़ा, आमला, पिप्पली, चव्य, पिप्पली-मूल, और अजवायन प्रत्येक १ तोला।

क्वाथ्य जल—१३ सेर।

शेष जल—३ सेर ४ छटांक।

मधुर द्रव्य - मधु १ सेर १० छटांक।

संधानावधि—एक मास।

उपयोग—यह प्रमेह नाशक है। मात्रा ८ तोले लिखी है; परन्तु १॥ से २॥ तोले तक पर्याप्त है।

विशेष द्रष्टव्य—मधु आधा आधा करके दो वार में मिलाएं। किण्व दो छटांक डालें।

लोध्रासव

(चरक संहिता, गद निग्रह, योगरत्नाकर)

लोध्रं शठीं पुष्करमूलमेलां मूर्वां विडङ्गं त्रिफलां यवानीम्।
चव्यं प्रियङ्गुं क्रमुकं विशालां किराततिक्तं कटुरोहिणीं च ॥
भार्गीं नतं चित्रकपिप्पलीनां मूलं सकुष्ठातिविषां च पाठाम्।
कलिङ्गकान् केसरमिन्द्रसाह्वं नखं सपत्रं मरिचं लवं च ॥
द्रोणेऽम्भसः कर्षसमानि पक्त्वा पूते चतुर्भागजलावशेषे।
रसेऽर्धभागे मधुनः प्रदाय पक्षं निधेयो घृतभाजनस्थः ॥

लोध्रासवोऽयं कफपित्तमेहान् क्षिप्रं निहन्याद् द्विपल प्रयोगात् ।
पाण्ड्वामयार्शांस्यरुचिं ग्रहण्या दोष किलास विविध च कुष्ठम् ॥

औषध द्रव्य—पठानी लोध्र, कचूर, पोहकरमूल, छोटी इलायची, मूर्वा, विडङ्ग, हरड़, बहेड़ा, आमला, अजवायन, चव्य प्रियङ्गु, चिकनी सुपारी, इन्द्रायणमूल, चिरायता, कुटकी, भारंगी, नत, चित्रकमूल, पिप्पलीमूल, कुष्ठ, अतीस, पाठा, इन्द्रजौं, नागकेसर, कूड़े की छाल, नख, तेजपत्र, कालीमिरच, और नागरमोथा, प्रत्येक १ तोला ।

क्वाथ्य जल—१३ सेर।
शेष जल ३ सेर ४ छटांक।
मधुर द्रव्य—मधु ८ सेर १० छटांक ।
सन्धानावधि—पन्द्रह दिन ।

उपयोग—यह आसव कफ प्रमेह, पाण्डु, अर्श, अरुचि, ग्रहणी दोष तथा विविध कुष्ठ रोगों को नष्ट करता है । रक्तप्रदर रक्तपित्त, और बालकों के मसूरिका एवं रोमान्तिका के पीछे रक्त में लीन शेष विष तथा मूत्रावरोध आदि रोगों में भी यह उपयोगी है । मात्रा—१ से २॥ तोले ।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें ; मधु के आसव में बदल जाने पर इतना ही मधु और डाल कर संधान पूर्ण करें।

किण्व दो छटांक डालें ।

चरक में इसे मध्वासव लिखा है ; परन्तु प्रारम्भ में लोध्र शब्द होने से तथा अन्य ग्रन्थों में लोध्रासव पाठ होने से हम ने लोध्रासव नाम ही उचित समझा है ।

लोहारिष्ट

(सुश्रुत संहिता)

शालसारादिनिर्यूहे चतुर्थांशावशेषिते ।
परिस्रुते ततः शीते मधु माक्षिक मावपेत् ॥
फाणितीभावमापन्नं गुडं शोधितमेव च ।
श्लक्ष्णपिष्टानि चूर्णानि पिप्पल्यादिगणस्यच॥
ऐकध्यमावपेत् कुम्भे संस्कृते घृतभाविते ।
पिप्पली चूर्ण मधुभिः प्रलिप्तेऽन्तः शुचौ दृढे॥
श्लक्ष्णानि तीक्ष्णलोहस्य तत्र पत्राणि बुद्धिमान् ।
खदिराङ्गारतप्तानि बहुशः सन्निपातयेत् ॥
सुपिधान तु तं कृत्वा यवपल्ले निधापयेत् ।
मासांस्त्रींश्चतुरो वाऽपि यावदालोहसंक्षयात्॥
ततो जातरस तं तु प्रातः प्रातर्यथाबलम् ।
निषेवेत यथायोगमाहारं चास्य कल्पयेत् ॥
कार्श्यकृद्वलिनामेष सन्नष्टाग्नेः प्रसाधकः ॥
शोफनुद्गुल्महृत् कुष्ठमेह पाण्ड्वामयापहः।
प्लीहोदरहरः शीघ्रं विषमज्वरनाशनः ॥
अभिष्यन्दापहरणो लोहारिष्टो महागुणः ।

क्वाथ्य द्रव्य—शाल, असन, खैर, इरिमेद, तेन्दू, सुपारी, भोजपत्र, मेंढासिङ्गी, तुन, लालचन्दन, पतंग, शीशम, शिरीष, विजय सार, धव, अर्जुन, ताड, सागौन, 'करञ्ज, लताकरञ्ज, सलाई, अगर, और दारुहल्दी, यह शालसारादिगण कहाता

है। इसकी सब ओषधियां मिलित ५ सेर।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर। शेष—१३ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, मिरच, गजपिप्पली, वचा, हरेणुका, छोटी इलायची, अजमोद, इन्द्रजौं, पाठा, जीरा, भारङ्गी बकायन के बीज, हींग, कुटकी, सरसों, विडङ्ग, अतीस, और गम्भारी यह पिप्पल्यादिगण है। इस की सब ओषधियाँ मिलित १। सेर। खैर के अङ्गारों में अनेक वार तपाया हुवा शुद्ध और सूक्ष्म लोहचूर्ण १। सेर।

मधुर द्रव्य—गुड़ २॥ सेर; मधु या उसका आसव २॥ सेर।

सन्धानावधि—तीन या चार मास, लोहचूर्ण के लीन हो जाने तक।

उपयोग—शालसारादिगण कफदोष और मेद धातु को सुखाने वाला और प्रमेह, पाण्डु तथा कुष्ठ रोगों को दूर करने वाला है। पिप्पल्यादिगण कफहर, अग्निदीपक, तथा आमपाचक है और अरुचि, प्रतिश्याय, गुल्म और शूल आदि रोगों का नाशक है। कफ दोष तथा मेद-धातु की अधिकता एवं अग्निमान्द्य के हेतु से होने वाले प्रमेह और उस के उपद्रवों को दूर करने के लिए यह अरिष्ट प्रशस्त है। मात्रा १। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—इसमें मधुर द्रव्यों का परिमाण कम है। प्रारम्भ में चार सेर गुड़ तथा इतना ही मधु मिलाना चाहिये। सन्धान प्रारम्भ होने से जब आसव के घोल में मिठास कम हो जाए तो इतना ही गुड़ और मधु दुबारा मिलाना चाहिये। किण्व आध सेर डालें।

सारिवाद्यासव

(भैषज्यरत्नावली)

सारिवां मुस्तकं लोध्रं न्यग्रोधं पिप्पलं शठीम् ।
अनन्तां पद्मकं बालं पाठां धात्रीं गुडूचिकाम् ॥
उशीरं चन्दनद्वंन्द्वं यमानीं कटुरोहिणीम् ।
पत्रमेलाद्वयं कुष्ठं स्वर्णपत्रीं हरीतकीम् ॥
एषां चतुःपलान् भागान् सूक्ष्मचूर्णीकृतान् शुभान् ।
जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा दद्याद् गुडतुलात्रयम् ॥
पलानि दश धातक्या द्राक्षां षष्टिपलां तथा ।
मासं संस्थापयेद् भाण्डे संवृते मृण्मये शुभे ॥
सारिवाद्यासवास्यास्य पानान्मेहाश्च विंशतिः ।
शराविकादयः सर्वाः पिड़िकास्तत्कृताश्च याः ॥
औपदंशिकरोगाश्च वातरक्तं भगन्दरम् ।
सर्व एते शमं यान्ति व्याधयो नात्र संशयः ॥

औषध द्रव्य—दोनों अनन्तमूल, नागरमोथा, लोध्र, बड़ की छाल, पीपल की छाल, कचूर, पद्माख, नेत्रबाला, पाठा, आमला; गिलोय, खस, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, अजवायन, कुटकी, तेजपत्र, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, कुष्ठ, सनाय, और हरड़, प्रत्येक १६ तोले; धावे के फूल आध सेर, मुनक्का ३ सेर।

जल—२६ सेर।

मधुर द्रव्य—गुड़ १५ सेर।

संधानावधि—एक मास

उपयोग—यह आसव उत्कृष्ट पित्तशामक रक्तशोधक तथा मूत्रल है। इसके सेवन से यकृत् सक्रिय होता है, मल शुद्ध होता है; क्षुधा वृद्धि होती है ; और कामला आदि पित्त की व्याधियां दूर होती हैं।

इस का दीर्घ काल तक सेवन करने से विविध प्रमेह, उपदंश तथा उन से होने वाले पिड़का, खुजली आदि त्वचा और रक्त के रोग निवृत्त होते है। उपदंश विष को नष्ट करने के लिए यह आसव अनुपम है।

पित्तशामक होने के कारण हाथ पैर तथा अन्य अंगों में दाह, जलन होने पर इस के सेवन से लाभ होता है।

मूत्र में दाह होना, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात में सारिवाद्यासव का सेवन करनेसे मूत्रोत्पत्ति अधिक होकर लाभ पहुँचता है।

शुक्र स्थान पर भी इसका शामक प्रभाव है। जिस से स्वप्न दोष आदि विकारों में भी यह लाभदायक है। रक्त प्रदर में भी इसका सेवन उपयोगी है। मात्रा—१। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें। गुड़ १० सेर प्रारंभ में मिलादें; मिठास कम होजाने पर १० सेर गुड़ पुनः मिलाएं; संधान पूर्ण होजाने पर छान कर ५ सेर गुड और मिला सकते हैं। यदि जल की मात्रा दुगुनी की जाय तो पांच पांच सेर गुड़ तीन वार करके डालना चाहिये। किण्व १ सेर डालें।

विद्रधि--अधिकार

वरुणासव

(गदनिग्रह)

शतं पलानां वरुणस्यमूलं त्वक् शिंशपायाश्च तदर्धमात्रा।
तावत्तथा पुष्करमूलमुक्तं तदर्धमग्निश्च तदर्धमात्रः॥
कुरण्टको रोहितकत्वचश्च तावच्च शिग्रुर्दशमूलकं च।
पलानि त्रिंशत् खलु देवदारोः क्षुद्रा च तुल्या सुरदारुणा च॥
दर्भस्य मूलानि पलानि पञ्च हिंस्नातरोस्त्रीणि च कण्टकार्याः।
गजादनस्यापि पलानि सप्त शतावरीमूलं पलत्रयं च॥
तत्तुल्यं काश्मर्यकमर्जुनश्च शृङ्गी शताह्वा गजपिप्पली च।
बला शठी नागबला करञ्ज त्रायन्तिका केबुक मेषशृङ्ग्यः॥
कुष्ठं च वासा सित कर्बुकंच विडङ्ग कृष्णातिविषाश्च जीरकम्।
चव्यं च रास्नोत्पलसारिवा च स्यात् कौटजश्चाप्यथ दीप्यकं च॥
वातार्यरिष्टारुरनार्यतिक्तं रक्ताऽमृता तेजनीवल्कलं च।
सव्याघिघाता हपुषा च भृङ्गी प्रत्येकमेषां हि पलद्वयं तु॥
पचेज्जलद्रोणचष्टुये च तत्पादशेषे पलषट्शतं च।
क्षिपेद् गुडं माक्षिकधातकीनां पलानि त्रिंशत् सकलं पुनस्ततः॥

निधापयेच्चागरुमांसीधूपिते भाण्डे ततः कुङ्कुमचन्दनद्वयम् ।
पलं क्षिपेद्वै कतकं सचन्द्रं लवङ्ग माकल्लकवंशरोचनम् ॥
भार्गी सुराष्ट्री तगरं कवाबकं जातीफल पत्रकजातिपत्रिके ।
लाहं चतुर्जातक बालकं च प्रत्येकमेषां हि पलं विनिक्षिपेत् ॥
मासं निधेयो यवमध्यन्स्ततः पेयो यथा व्याधिबलं समीक्ष्य ।
प्लीहोदरं विद्रधिगुल्मकासं श्वासं तथा रक्तविकारहिक्के ॥
शूलाम कातावुद पाण्डु रोगं कुष्ठं तथा छर्दिमरोचकं च ।
शोफं तथाध्मान भगन्दरं च शुक्राश्मरीं ग्रन्थिमनेक भेदम् ॥
शोषापतानार्दित पक्षघात सन्धिग्रहार्तीश्च हलीमकं च ।
निहन्ति बन्ध्यासुतदोऽथवृष्यः प्राणप्रदोऽयं वरुणासवो हि ।
पित्तानिलश्लेष्म रुजापहश्च वैतालरक्षो ग्रहभीतिहन्ता ।
ग्रन्थान् समालोक्य चिकित्सकानां हिताय नूनं रचितश्च रोगिणाम् ॥

क्वाथ्य द्रव्य—वरने की जड़ या छाल ५ सेर; शीशम की छाल २॥ सेर, पोहकरमूल २॥ सेर; चित्रक १। सेर, पियावांसा रुहेड़े की छाल, सुहांजने की छाल दशमूल की प्रत्येक औषधि १०-१० छटांक; देवदारु, छोटी कटहली, १॥-१॥ सेर; दाभ की जड़ २५ तोले; बालछड, बड़ी कटहली १२-१२ तोले; खिरनी की छाल २८ तोले, शतावरी गंभारी, अर्जुन, काकड़ासिंगी, सौंफ, गज पिप्पली, प्रत्येक १२-१२ तोले; खरैंटी, कचूर, नागबला, करञ्जुआ, त्रायमाण, मोथा, मेढासिंगी, कुष्ठ, वासा, अगर, आंवा हलदी, विडङ्ग, पिप्पली, अतीस, जीरा, चव्य, रास्ना, नीलोफल, सारिवा, कूड़े की छाल, अजवायन, एरण्डमूल, नीम की छाल गिलोय, अमलतास, हाऊबेर, भारंगी, तेजबल की छाल, और मजीठ, प्रत्येक ८ तोले।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर।

शेष जल—१३ जल।

मधुर द्रव्य—गुड़ ३० सेर, मधु १॥ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—धाये के फूल १॥ सेर, केसर, श्वेत तथा लालचन्दन ४-४ तोले; निर्मली के बीज, कर्पूर, लौंग, अकरकरा, वंशलोचन, भारङ्गी, तगर, शीतलचीनी, जायफल, तेजपत्र; जावित्री, लोहभस्म, दालचीनी, छोटी इलायची, नागकेसर, तेज पत्र, और नेत्रबाला, प्रत्येक ४ तोले।

सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग—यह अरिष्ट प्लीहावृद्धि, विद्रधि, गुल्म, कास, श्वास, रक्तविकार, हिचकी, शूल, आमवात, अर्बुद, पाण्डुरोग कुष्ठ, वमन, अरुचि, शोथ, अफारा, भगन्दर, पथरी, ग्रन्थि (गांठें होना) शोष, अर्दित, लकवा, गठिया तथा पक्षाघात आदि रोग नाशक है। मात्रा १। से २॥ तोला।

विशेष द्रष्टव्य—इस आसव को क्वाथ्य ओषधियों, क्वाथ्य जल एवं मधुर द्रव्यों के परिमाण का अनुपात ठीक नहीं है। क्वाथ्य द्रव्य लगभग २६ सेर हैं, इन में लिखित परिमाण में जल डाल कर चतुर्थांश क्वाथ करना सम्भव नहीं। इसी प्रकार मधुर द्रव्यों से घोल न बन कर अवलेह बन जाएगा। इसलिए क्वाथ्य द्रव्यों से आठ गुणा अर्थात् लगभग ५मन १२ सेर जल लेकर चतुर्थांश अर्थात् १ मन १३ सेर क्वाथ शेष रखना चाहिए।

गुड़ १०-१० सेर की मात्रा में दो बार करके डालें, सन्धान

पूर्ण होजाने पर आसव को छानकर ५ सेर गुड़ तीसरी वार और मिला सकते हैं। किण्व २ सेर डालें।

विडङ्गारिष्ट

(शार्ङ्गधरसंहिता, योगरत्नाकर, भैषज्यरत्नावली)

विडंगं ग्रन्थिकं रास्ना कुटजत्वक्फलानि च।
पाठैलवालुकं धात्री भागान् पञ्चपलान् पृथक्॥
अष्टद्रोणेऽम्भसः पक्त्वा कुर्याद् द्रोणावशेषितम्।
पूते शीते क्षिपेत्तत्र क्षौद्रं पलशतत्रयम्॥
धातकी विंशतिपलां त्रिजातं द्विपलं तथा।
प्रियङ्गुकाञ्चनाराणां सलोध्राणां पलं पलम्॥
व्योषस्य च पलान्यष्टौ चूर्णीकृत्य प्रदापयेत्।
घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मासमेकं विधारयेत्॥
ततः पिबेद् यथाऽर्हं तु जयेद् विद्रधिमुच्छ्रितम्।
ऊरुस्तम्भाश्मरीमेहान् प्रत्यष्ठीला भगन्दरान्॥
गण्डमालां हनुस्तम्भं विडङ्गारिष्टसंज्ञितः॥

क्वाथ्य द्रव्य—विडङ्ग, पिप्पलीमूल, रास्ना, कूड़े की छाल, इन्द्रजौ, पाठा, एलवालुक, और आमला; प्रत्येक २० तोले।

क्वाथ्य जल—२ मन २४ सेर।

शेष—१३ सेर।

मधुर द्रव्य—मधु १५ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल १ सेर, त्रिजातक ८ तोले, प्रियङ्गु, कचनार की छाल, तथा लोध्र प्रत्येक ४ तोले, और त्रिकटु ८ तोले ।

सन्धानावधि—एक मास ।

उपयोग—यह अरिष्ट विद्रधि, ऊरुस्तम्भ, पथरी, प्रमेह, प्रत्यष्ठीला, भगन्दर गण्डमाला एवं हनुस्तम्भ आदि रोगों में उपयोगी है। मात्रा—१॥ से २॥ तोले ।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण करें। शहद ५-५ सेर करके तीन बार में डालें। किण्व १ सेर मिलाएं। गदनिग्रह में वात-व्याधि अधिकार में विडङ्गासव का पाठ है। उसमें कचनार की छाल नहीं और भारंगी तथा गन्धवाला विशेष हैं। प्रचलन इस विडङ्गारिष्ट का अधिक है।

भगन्दराधिकार

गुग्गुल्वासव

(गदनिग्रह)

शतं हरीतकीनां तु विभीतक शतं तथा ।
प्रस्थमामलकीनां च गुग्गुलोश्च चतुष्पलम् ॥
त्वगेला पिप्पलीमूल चव्य चित्रक दीप्यकम् ।
व्योषं तालीशपत्रञ्च मुस्तकेसरकट्फलम् ॥
जलद्रोणे विपक्तव्यं पादशेषे जले ततः ।
धातक्याः प्रस्थमेकं तु तथा गुडशतद्वयम् ॥
द्राक्षादाडिमखण्डानां भागान् दशपलोन्मितान् ।
सर्वमेतत् समालोड्य स्थापयेद् भाजने शुभे ॥
यदा युक्तरसः स्याच्च सुजातो गन्धवर्णतः ।
त पूरयेत्तदा भाण्डे शुक्तस्येक्षुरसस्य तु ॥
षण्मासस्संयुतो ह्येष द्रवः पेयः प्रयोगतः ।
गुग्गुल्वासव इत्येष देयः सर्वेषु रोगिषु ॥

प्राग्भक्त मध्यभक्तं वा ग्रासे ग्रासान्तरे तथा।
दद्याद् क्रमेण योग तु वयः सात्म्यमपेक्ष्य च॥
नाशयेदुदरं स्लीहामुरुस्तम्भं सकामलम् ।
चिरोत्थितमपि श्वासं कास शोफ भगन्दरान्॥
कृमि कुष्ठ प्रमेहेषु हितश्चैवाग्निदीपनः ॥

काथ्य द्रव्य—हरड़ ५ सेर, बहेड़ा ५ सेर, आमला ६४ तोले, गुग्गुलु १६ तोले, दालचीनी, छोटी इलायची, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, अजवायन, पिप्पली, सोंठ, मरिच, तालीशपत्र, नागरमोथा, नागकेसर, और कट्फल, प्रत्येक १६ तोले।

काथ्य जल—१३ सेर।

शेष जल--३ सेर ४ छटांक।

मधुर द्रव्य—गुड़ १० सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल ६४ तोले; मुनक्का और अनारदाना आध आध सेर।

सन्धानावधि—एक मास। इसे छान कर सिरके के पात्र में छः मास रखना चाहिये।

उपयोग--यह अग्निदीपक और उदररोग, स्लीहावृद्धि उरुस्तंभ, कामला, श्वास, कास, शोथ, भगन्दर, कृमि, कुष्ठ

तथा प्रमेह रोग नाशक है। मात्रा—१।-२॥ तोला; भोजन के पहिले या मध्य में सेवन करें।

विशेष द्रष्टव्य—इस आसव में क्वाथ्य द्रव्यों का परिमाण जल से लगभग दुगुना है, जिस से कि क्वाथ नहीं बन सकेगा। इस लिए क्वाथ्य द्रव्यों से चार गुना अर्थात् २॥ मन जल लेकर चतुर्थांश क्वाथ करना चाहिये, २५ सेर क्वाथ रहने पर ५ सेर गुड़ डाल कर संधान करें। घोल में मिठास कम हो जाने पर शेष गुड़ डाल कर संधान पूर्ण करना चाहिये। किण्व १ सेर मिलाएं।

कुष्ठाधिकार

आवर्तक्याद्यासव

(गदनिग्रह)

नेत्रभेषजशिफा पलाष्टकं सार्धमैलपलमर्धमस्तकीम् ।
हेमजार्धपलमेकतः कृतं द्रोणवारिमिलितं दिनत्रयात् ॥
यः पिबेद्द्विपलिकं दिनोदये नीरमस्तसमये समाहितः ।
तस्य नश्यति कटीसमुद्भवं दद्रु मासयुगलेन निश्चितम् ।

औषध द्रव्य—सनाय की जड़ (अभाव में सनाय पत्ती) ३२ तोले, मुसव्वर ६ तोले, और रूमी मस्तकी तथा रेवन्दी चीनी २-२ तोले ।

जल—१३ सेर ।

मधुर द्रव्य—मधु ५ सेर ।

संधानावधि—३ दिन ।

उपयोग—यह आसव श्रेष्ठ कोष्ठशोधक है । अंत्रस्थ विष को नष्ट कर रेचन द्वारा बाहिर फेंक कर यह आसव दद्रु तथा अन्य कष्ठों में लाभ पहुंचाता है । जिस से कटीप्रदेश की

दाद दो मास में निर्मूल हो जाती है। मात्रा--२॥ से ४ तोले; प्रातः सायं दिन में दो बार।

विशेष द्रष्टव्य-- ग्रंथकार ने मधुर द्रव्य का उल्लेख नहीं किया; उसके अभाव में आसवसन्धान संभव न होने से हमने मधु का विधान किया है। तीन दिन की संधानावधि भी अल्प है। संधान पूर्ण होने पर ही उपयोग में लाएं। मधु २॥-२॥ सेर करके दो वार में मिलाएं। धातकीपुष्प ८ तोले और किण्व आध सेर मिलाएं।

कनकारिष्ट

(गदनिग्रह, योगरत्नाकर)

खदिरकषायद्रोणे कुम्भे घृतभाविते समावाप्य।
पलिकां मात्रां क्षेप्यान् कृत्वा तामेव सूक्ष्मचूर्णं तु॥
त्रिफला त्रिकटुरजनीकतक त्वग्वाकुचो गुडूच्यश्च।
सविडङ्गमत्र मधुपलशतद्वयं प्रक्षिपेत् सर्वम्॥
धातकीपलान्यष्टौ क्वाथे चास्मिन् प्रदेयानि।
प्रातः प्रातस्तु पिबेन्नाशयति चिरोत्थितं कुष्ठम्॥
मासेन सर्वरोगान्निहन्ति च शोफमेहांश्च।
कनकारिष्टं प्रपिबन् भवति पुमान् कनककान्तिश्च॥

क्वाथ्य द्रव्य—खदिर छाल ५ सेर।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर।

शेष जल—१३ सेर।

मधुर द्रव्य—मधु १० सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—त्रिफला, त्रिकटु, हलदी, निर्मली की छाल, वाकुची, गिलोय, और विडङ्ग प्रत्येक ४ तोले; तथा धावे के फूल ३२ तोले।

सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग—एक मास तक सेवन करने से यह अरिष्ट सब प्रकार के कुष्ठ, शोथ, प्रमेह, कास, श्वास, बवासीर और भगन्दर आदि को दूर कर शरीर को स्वर्ण के समान सुन्दर बनाता है। मात्रा-१। से २॥ तोले

विशेष द्रष्टव्य—मधु २॥-२॥ सेर की मात्रा में ३-४ बार करके मिलाएं। किण्व आध सेर डालें।

कनकबिन्द्वरिष्ट

(चरक संहिता)

खदिरकषायद्रोणे कुम्भे घृतभाविते समारोप्य।
द्रव्याणि चूर्णितानि त्वष्टपलिकान्यत्र देयानि॥
त्रिफला व्योष विडङ्ग रजनी मुस्ताटरूषकेन्द्रयव सौवर्णीच।
तथा त्वक् छिन्नरुहा चेति तन्मासं निदधीत धान्यमध्ये॥
प्रातः प्रातः पिबेत्ततो युक्त्या मासेन महाकुष्ठं हन्त्येवाल्पं तु।
पक्षेणार्शः श्वास भगन्दर कास किलास प्रमेह शोषांश्च॥
ना भवति कनकवर्णः पीत्वारिष्टं कनकबिन्दुम्॥

क्वाथ्य द्रव्य—खदिरछाल ५ सेर।

क्वाथ्य जल--१ मन १२ सेर।

शेष जल--१३ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य--त्रिफला, त्रिकटु, विडङ्ग, हलदी, नागरमोथा, वासा, इन्द्रजौं, दारुहलदी और गिलोय प्रत्येक ३२ तोले।

सन्धानावधि एक मास तक धान्यराशि में रखें।

उपयोग--यह एक मास में महाकुष्ठ, तथा पन्द्रह दिन में क्षुद्रकुष्ठों को नष्ट करता है। यह बवासीर, श्वास, भगन्दर कास प्रमेह तथा क्षय आदि रोगों को भी दूर कर बल वर्ण एवं कांति को बढ़ाता है। मात्रा--१। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य-मूल पाठ में किसी भी मधुर द्रव्य का उल्लेख नहीं, फिर भी २॥-२॥ सेर मधु या चीनी दो बार में मिलाना चाहिए; अन्यथा आसवीय संधान संभव नहीं। धावे के फूल ३२ तोले और किण्व आध सेर डालें।

खदिरारिष्ट

(शार्ङ्गधर संहिता, गदनिग्रह; योगरत्नाकर; भैषज्य रत्नावली)

खदिरस्य तुलार्धं तु तत्तुल्यं देवदार्वपि।
वराया विंशतिर्दार्व्याः पलानां पञ्च विंशतिः॥
वाकुच्या द्वादशपलान्यष्ट द्रोणेऽम्भसः पचेत्।
द्रोणशेषे कषाये तु पूते शीते विनिक्षिपेत्॥
धातक्या विंशतिपलं माक्षिकस्य शतद्वयम्।
शर्करायास्तुलामेकां चूर्णानीमानि दापयेत्॥
कङ्कोलकं लवङ्गञ्च एला जातीफलं त्वचम्।

केसरं मरिचं पत्रं पलिकान्युपकल्पयेत् ॥
पिप्पलीनां तु कडवं स्थापयेद् घृतभाजने ।
मासादूर्ध्वं पिबेन्मात्रामपेक्ष्याग्निबलाबलम् ॥
सर्वकुष्ठहरो ह्येष पाण्डुहृद्रोगकासनुत् ।
कृमिग्रन्थ्यर्बुदग्रन्थि गुल्म प्लीहोदरान्तकृत् ॥
एष वै खादरारिष्ट· कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥

क्वाथ्य द्रव्य— खैरछाल २॥ सेर, देवदारु ०॥ सेर, त्रिफला का प्रत्येक द्रव्य १ सेर दारुहलदी· १। सेर; वाकुची ४८ तोले ।

क्वाथ्य जल—२ मन २४ सेर ।

शेष जल—१३ सेर ।

मधुर द्रव्य—मधु १० सेर; चीनी ५ सेर ।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल १ सेर, शीतलचीनी, लौंग, छोटी इलायची, जायफल, दालचीनी, नागकेसर, मरिच, तथा तेजपत्र प्रत्येक ४ तोले और पिप्पली १६ तोले ।

सन्धानावधि—एक मास ।

उपयोग— कुष्ठ रोगों में कफ की प्रधानता होने पर इस आसव के प्रयोग से विशेष लाभ होता है । यह आसव, पाचक, सा·क और रक्तशोधक है। अंत्रस्थ विष और कृमियों को यह नष्ट करता है । सब प्रकार के कुष्ठ, रक्तविकार, हृदयरोग, पाण्डुरोग, कृमि, कास,

श्वास, प्लीहोदर तथा गुल्म आदि रोगों में यह आसव अत्यन्त उपयोगी है। मात्रा–१। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें, मधु ५-५ सेर करके दो बार में मिलाना चाहिये। संधान पूर्ण हो जाने पर आसव को छान कर ५ सेर मधु या चीनी और मिला कर बोतलों में भरलें। किण्व १ सेर डालें।

खदिरासव

(गद निग्रह)

खदिरस्य तुलामम्भसि विपचेच्चतुर्द्रोणसंमिते शेषम्।
पादं विगृह्य शीते दद्यान्मधुनस्तुलां सार्धाम्॥
वस्त्रविपूते चूर्णं व्योषत्रिफला पिण्डखर्जूरी।
स्वर्णत्वग्वाकुचिकामृता विडङ्गपलाशानाम्॥
धातकि षोडशपलं दत्त्वा प्रविलोडितं नित्यम्।
यावत् षोडश दिवसाः षोडशके मधुतुलां दद्यात्॥
मासात् परतः पेयां दत्त्वा मृगनाभिमाषकं पटे बद्धम्।
कर्पूरमाषद्वयमेष खदिरासवो महाकुष्ठे॥

क्वाथ्य द्रव्य—खैर छाल ५ सेर।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर।

शेष जल—१३ सेर।

मधुर द्रव्य—मधु १२॥ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—पिप्पली, सोंठ, मरिच, हरड़, बहेड़ा, आमला, खजूर, दारुहलदी, वाकुची, गिलोय, तथा विडङ्ग प्रत्येक ४ तोले; धावे के फूल आध सेर, कस्तूरी १ माशा, और कर्पूर २ माशा ।

संधानावधि—एक मास ।

उपयोग—यह महाकुष्ठ विनाशक है ।

विशेष द्रष्टव्य—३॥ सेर शहद प्रारंभ में घोल बनाते हुए डालें; मिठास कम हो जाए तो शेष मधु मिलाएं । १६ दिन के पश्चात् ५ सेर मधु और मिला कर एक मास पूरा होने तक संधान होने दें । किण्व आध सेर डालें ।

संधान पूर्ण होजाने पर आसव को छान कर बोतल में डालते समय कस्तूरी और कर्पूर को मद्य में घोल कर प्रत्येक बोतल में अनुपात से मिला देना चाहिए ।

पूतीकारिष्ट

(सुश्रुत संहिता)

पूतीकचव्यचित्रकसुरदारुसारिवादन्तीत्रिकटूनां प्रत्येकं षट्पलिका भागा बदरकुडवस्त्रिफलाकुडव इत्येतेषां चूर्णानि ततः पिप्पलीमधुघृतैरन्तः प्रलिप्ते घृतभाजने प्राक्कृतसंस्कारे सप्तोदक कुडवानयोरजोऽर्धकुडवमर्धतुलां च गुडस्याभिहितानि चूर्णानि आवाप्य स्वनुगुप्तं कृत्वा यवपल्ले सप्तरात्रं वासयेत्, ततो यथाबलमुपभुञ्जीतैषोऽरिष्टः कुष्ठमेहमेदः पाण्डु

रोगश्वयथूनपहन्ति ॥

औषध द्रव्य– घृतकरंज, चव्य, चित्रक, देवदारु, सारिवा, दन्तीमूल, पिप्पली, सोंठ, मरिच, प्रत्येक २४ तोले, बेरी की जड़, हरड़, बहेड़ा तथा आमला प्रत्येक २४ तोले और शुद्ध-लोहचूर्ण ८ तोले।

जल--१ सेर ८ छटांक।
मधुर द्रव्य - गुड़ २॥ सेर।
संधानावधि—७ दिन जौ में दबा कर रखें।

उपयोग—यह कुष्ठ, प्रमेह, स्थूलता तथा शोथ नाशक है। लोहासव के समान ही इस का उपयोग किया जा सकता है। मात्रा-१। से २॥ तोले; कुष्ठहर खदिर आदि ओषधियों के क्वाथ में घोल कर पीना चाहिये।

विशेष द्रष्टव्य—इसमें औषध द्रव्य लगभग ३॥। सेर हैं; उनके अनुपात से जल परिमाण अति न्यून है। अतः चार गुना अर्थात् पन्द्रह सेर जल लें। गुड़ प्रथम वार ३ सेर मिलाएं। संधान प्रारंभ हो चुकने पर मिठास कम होजाय तो इतना ही गुड़ पुनः मिलाना चाहिये। इसमें संधान के लिए बेरी की जड़ है अतः धावे के फूल डालने की आवश्यकता नहीं। किएव आध सेर डालें। पात्र में पिप्पली और घृत एवं मधु का लेप करें। पूतीक से अनेक वैद्य वाकुची लेते हैं; परंतु उसे पूतिफली कहा है; पूतीक शब्द घृतकरंज के लिए है।

निर्दिष्ट परिमाण में जल लेने से यह अरिष्ट पिण्डरूप

होगा। अतः डल्हणाचार्य ने इसे पिण्डारिष्ट की संज्ञा दी है। इसे पिण्डरूप में बनाने के लिये भी जल की लिखित मात्रा कम है। द्रव द्वैगुण्य परिभाषा के अनुसार दुगुना अर्थात् लगभग तीन सेर जल लेना चाहिये। अनेक विद्वानों के मत में इसे बिना छाने ही पीना चाहिये।

सुश्रुत संहिता में इसी विधि से शालसारादि गण, आरग्वधादि गण तथा न्यग्रोधादि गण से कुष्ठ रोगों की चिकित्सा के लिये अरिष्ट आसव और सुरा बनाने का विधान किया है। ये तीनों गण उत्तम रक्तशोधक, प्रमेहहर और कुष्ठ नाशक है।

इसी प्रकार पलाशभस्म के तीन भाग परिस्रुत जल में दो भाग फाणित और पूतीकाद्यरिष्ट के द्रव्य मिला कर आसव बनाने का निर्देश है। तिल आदि के क्षारों से भी इसी विधान से आसव बनाए जा सकते हैं।

मध्वासव

(चकर संहिता)

खदिरसुरदारुसारं श्रपयित्वा तद्रसेन तोयार्थम्।
क्षौद्रप्रस्थे कार्यः कार्ये ते चाष्टपालिके च ॥
ततश्चायश्चूर्णानामष्टपलं प्रक्षिपेत्तथामूलानि।
त्रिफलैले त्वग्मरिचं पत्रं कनकं च कर्षांशम् ॥
मत्स्यण्डिका मधुसमा तन्मासमायसे भाण्डे।
मध्वासवमाचरतः कुष्ठकिलासे शमं यातः ॥

क्वाथ्य द्रव्य—खैरछाल, देवदारु ३२-३२ तोले।

क्वाथ्य जल—१२ सेर १३ छटांक ।

शेष जल—३ सेर ४ छटांक ।

मधुर द्रव्य—मधु ६४ तोले; मिश्री या चीनी ६४ तोले।

प्रक्षेप द्रव्य—शुद्ध लोहचूर्ण ३२ तोले; हरड़, बहेड़ा, आमला, छोटी इलायची, दालचीनी, मरिच, तेजपत्र, और नागकेसर प्रत्येक १ तोला।

सन्धानावधि—एक मास। लोहपात्र में संधान करें।

उपयोग सर्वविध कुष्ठनाशक है।

विशेष द्रष्टव्य—पहिले घोल में मधु मिला कर संधान करें; मिठास कम हो जाने पर चीनी मिला कर संधान पूरा कर लें। धावे के फूल १६ तोले और किण्व आध सेर मिलाएं।

मसूरिकाधिकार

एलाद्यरिष्ट

(भैषज्यरत्नावली)

पञ्चाशत् पलमेलायाः वासायाः पल विंशतिः ।
मञ्जिष्ठा कुटजं दन्तो गुडूचीं रजनीद्वयम् ॥
रास्नामुशीरं मधुकं शिरीषं खदिरार्जुनौ ।
भूनिम्ब निम्बवन्हींश्च कुष्ठ मधुरिकां तथा ॥
गृहीत्वा दिक्पलोन्मित्या जलद्रोणाष्टके पचेत् ।
द्रोणशेषे कषाये च पूते शीते विनिक्षिपेत् ॥
धातक्याः षोडश पल माक्षिकस्य तुलात्रयम् ।
चातुर्जातं त्रिकटुकं चन्दन रक्तचन्दनम् ॥
मांसीं मुरां मुस्तकं च शैलेयं सारिवाद्वयम् ।
पलप्रमाणतश्चात्र क्षिप्त्वा मासं निधापयेत् ॥
एलाद्यरिष्टो हन्त्येष बिसर्पांश्च मसूरिकाम् ।
रोमान्तिकां शीतपित्तं विस्फोटं विषमज्वरम् ॥
नाड़ीब्रणं ब्रणं दुष्टं कास श्वासञ्च दारुणाम ।
भगन्दरोपदंशौ च प्रमेह पिडकास्तथा ॥

क्वाथ्य द्रव्य—छोटी इलायची २॥ सेर, वासा १ सेर, मजीठ, इन्द्रजौं, दन्तीमूल, गिलोय, हलदी, दारुहलदी, रास्ना, खस, मुलहठी सिरस की छाल, खैरछाल, अर्जुन छाल, चिरायता, नीम की छाल, चित्रक, कुष्ठ, सौंफ, प्रत्येक आध आध सेर।

क्वाथ्य जल—२ मन २४ सेर।

शेष जल—१३ सेर।

मधुर द्रव्य—शहद १५ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल ६४ तोले; दालचीनी, छोटी-इलायची, नागकेसर, तेजपत्र, पिप्पली, मरिच, सोंठ, श्वेत-चन्दन, लाल चन्दन, जटामांसी, मुरा, नागरमोथा, शिलारस, अनन्तमूल, और काली सारिवा प्रत्येक ४ तोले।

सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग—यह पित्तश्लेष्म शामक तथा रक्तशोधक है। पित्त श्लेष्म दोष तथा रक्त के दूष्य होने के कारण मसूरिका (चेचक) रोमान्तिका (खसरा) वीसर्प, शीतपित्त (छपाकी), नासूर, बिगड़े हुए व्रण, भगन्दर, उपदंश प्रमेहपिड़का, विषम-ज्वर, कास, तथा श्वास आदि रोगों में लाभदायक है। मसूरिका और रोमान्तिका के उपद्रव शान्त हो जाने पर अवशिष्ट विष के प्रभाव को दूर करने के लिए इस आसव का प्रयोग करना चाहिए। मात्रा १। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण करें; मधु ५-५ सेर करके तीन वार मिलाए। किण्व १ सेर डालें।

स्त्रीरोगाधिकार

अशोकारिष्ट

(भैषज्यरत्नावली)

अशोकस्य तुलामेकाञ्चतुर्द्रोणे जले पचेत् ।
पादशेषे रसे पूते शीते पलशतद्वयम् ॥
दद्यात् गुडस्य धातक्याः पलषोडशकं पलम् ।
अजाजी मुस्तकं शुण्ठी दार्व्युत्पलफलत्रिकम् ॥
आम्रास्थि जीरकं वासं चन्दनञ्च विनिक्षिपेत् ।
चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत् ॥
मासादूर्ध्वञ्च पीत्वैनमसृग्दररुजां जयेत् ।
ज्वरञ्च रक्तपित्तार्शो मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥
मेह शोफारुचिहरस्त्वशोकारिष्ट संज्ञितः ॥

क्वाथ्य द्रव्य—अशोक की छाल ५ सेर ।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर ।

शेष—१३ सेर ।

मधुर द्रव्य—गुड़ १० सेर ।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल ६४ तोले, कालाजीरा, नागरमोथा सोंठ, दारुहलदी नील कमल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, आम की गुठली की गिरी, श्वेत जीरा, वांसे की छाल, और लालचन्दन प्रत्येक चार २ तोले।

सन्धानावधि—एक मास।

प्रयोग—यह स्त्रियों के प्रदर रोग की उत्तम औषध है। अत्यार्तव और कष्टार्तव दोनों ही अवस्थाओं में उपयोगी है। कष्टार्तव के साथ मन्द ज्वर हो तो उसे भी यह अरिष्ट दूर करता है। गर्भाशय को बलवान् बनाकर उसे यह गर्भधारण के योग्य बनाता है। रक्तपित्त तथा अर्श रोग में रक्तस्राव होता हो तो इस अरिष्ट से लाभ होता है। मात्रा-१। से २॥ तोला।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण लें। गुड़ प्रारंभ में आधा डालें, आसवीय घोल के मीठा न रहने पर शेष गुड डालें। सुराबीज १ सेर डालें।

कार्पासारिष्ट

(श्री पं० घनानन्द जी पन्त विद्यार्णव, देहली)

औषध द्रव्य—कपास की जड़ की छाल ३ सेर, बांस की जड़ की छाल (अभाव में पत्ते) २ सेर, सुहांजना १॥ सेर, रक्तचित्रकमूल १॥ सेर, अशोकछाल १॥ सेर, दशमूल मिलित १॥ सेर।

क्वाथ्य जल—२ मन ८ सेर।

शेष जल—२२ सेर।

मधुर द्रव्य--गुड़ १० सेर; मधु २॥ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—बाबूना पुष्प १ सेर, धावे के फूल ऽ॥ सेर, लोध्र, गुग्गुलु, एलुआ, देवदारु, पुनर्नवा, जटामांसी, दारुहल्दी, सुगन्धमरिच, सदापहा, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, प्रत्येक १० तोले, और मुनक्का १। सेर।

सन्धानावधि--एक मास।

उपयोग—प्रसव और प्रसूत काल में गर्भाशय का संकोच करने के लिए उत्तम है। मात्रा— २ से ४ तोले।

विशेष द्रष्टव्य— गुड़ और मधु पहिले आधी आधी मात्रा में मिलाएं; संधान उठने से मिठास कम होजाने पर शेष गुड़ तथा मधु मिला कर संधान पूर्ण करलें।

जीरकाद्यरिष्ट

(भैषज्य रत्नावली)

जीरकस्य तुलाद्वन्द्वं चतुर्द्रोणे जले पिवेत्।
द्रोणशेषे क्षिपेत्तत्र तुलात्रयमितं गुडम्॥
धातकीं षोडशपलां शुण्ठीञ्च द्विपलोन्मिताम्।
जातीफलं मुस्तकं च चातुर्जातं यमानिकाम्॥
कंकोलं देवपुष्पं च पलमानेन निक्षिपेत्।
मासं संस्थापयेद् भाण्डे मृत्तिकापरिनिर्मिते॥

ततः कल्कान् विनिहृत्य पाययेत् कर्षमात्रया।
अरिष्टो जीरकाद्योऽयं निहन्यात् सूतिकामयान्॥
ग्रहणीमतिसारञ्च तथा वन्हेश्च वैकृतिम्।

क्वाथ्य द्रव्य---जीरा १० सेर।
क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर।
शेष जल—१३ सेर।
मधुर द्रव्य—गुड़ १५ सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल ६४ तोले सोंठ, ८ तोले; जायफल, नागरमोथा, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेसर, अजवायन, शीतल चीनी, और लौंग, प्रत्येक ४ तोले।

संधानावधि—एक मास।

उपयोग---यह अरिष्ट प्रसव के पीछे जीर्ण सूतिकारोग में मन्दज्वर, आलस्य, अग्निमान्द्य, उदरशूल, अतिसार और ग्रहणी आदि उपद्रवों को दूर करने के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

इसके सेवन से प्रसूता के स्तन्य की वृद्धि होती है। प्रसव व्यतिरिक्त अवस्था में भी मन्दाग्नि, अपचन, जीर्ण अतिसार और ग्रहणी आदि रोगों में पुरुष और स्त्री दोनों को ही इसके सेवन से बहुत लाभ होता है। मात्रा-१॥ से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—जीरा सुगन्धित द्रव्य है अतः इसका क्वाथ पात्र को ढक कर मन्दाग्नि पर करना चाहिए। जीरा मृदु द्रव्य है; अतः अर्धांश क्वाथ करना ही पर्याप्त है। जीरे को

हाथों से भली प्रकार मसल लेना चाहिए, और छानने के वस्त्र को जल में भिगो कर गीला कर लेना चाहिए।

अर्धांश क्वाथ करने पर जल को द्विगुण करने की आवश्यकता नहीं। पांच पांच सेर गुड़ दो बार करके मिलाएं। और संधान पूर्ण होजाने पर आसव को छान कर शेष ५ सेर गुड़ मिला कर बोतलों में भरलें। किण्व १ सेर डालना चाहिये।

पत्रांगासव

(भैषज्य रत्नावली)

पत्राङ्गं खदिरं वासा शाल्मलीकुसुमं वला।
भल्लातकं सारिवे द्वे जपाकुसुममस्फुटम ॥
आम्रास्थि दार्वी भूनिम्ब आफेनफलजीरकम्।
लौहं रसाञ्जनं बिल्वं केशराजं त्वचं तथा ॥
कुंकुमं देवकुसुमं प्रत्येकं पलसम्मितम्।
सर्वं सुचूर्णितं कृत्वा द्राक्षायाः पलविंशतिम्॥
धातकीं षोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत्।
शर्करायास्तुलां दत्वा क्षौद्रस्याधतुलां तथा ॥
एकीकृत्य क्षिपेद्भाण्डे निदध्यान्मासमात्रकम्।
हन्त्युग्रं प्रदरं श्वेतमरुणञ्च सवेदनम् ॥
ज्वरं पाण्डु तथा शोफं मन्दाग्नित्वमरोचकम्॥

औषध द्रव्य—पतंग, खैर छाल, वासा, सेमल के फूल, खरैंटी, शोधित भिलावे, अनन्तमूल, सारिवा, गुडहल के अनखिले फूल, आम की गुठली की गिरी, दारुहलदी, चिरायता,

पोस्तडोडा, जीरा, तगर, रसौंत, बेलगिरी, भांगरा, दालचीनी, काश्मीरी केसर, और लौंग, प्रत्येक ४ तोले। मुनक्का १ सेर; और धावे के फूल ६४ तोले।

जल २६ सेर।

मधुर द्रव्य—चीनी ५ सेर, मधु २॥ सेर।

सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग—यह उग्र पीड़ायुक्त रक्त प्रदर तथा श्वेत प्रदर में प्रशस्त है। प्रदर के कारण होने वाले मन्द ज्वर, पाण्डु, अरुचि; अग्निमान्द्य तथा शोथ आदि उपद्रवों को भी यह दूर करता है।

विशेष द्रष्टव्य— आसवघोल में प्रथम पांच सेर गुड़ मिलाएं। सन्धान से मिठास कम होजाए तो २॥ सेर मधु और २॥ सेर गुड़ दुवारा मिला कर सन्धान पूर्ण करलें। किण्व १ सेर डालना चाहिये।

लक्ष्मणारिष्ट

(भैषज्य रत्नावली)

लक्ष्मणायाः पलशतं चतुर्द्रोणे जले पचेत्।
पादशेषे कषायेऽस्मिन् क्षिपेद् गुडतुलाद्वयम्॥
धातकीं षोडशपलां मुस्तकं मधुकं बलाम्।
फलत्रयं निशाद्वन्द्वं जीरकं चन्दनद्वयम्॥
अजमोदां यमानीञ्च बिल्वञ्च पलमानतः।
मासादूर्ध्वं तु सिद्धोऽयमरिष्टः स्त्रीगदान्तकृत्॥

क्वाथ्य द्रव्य—लक्ष्मणा ५ सेर।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर।

शेष जल--१३ सेर।

मधुर द्रव्य—गुड़ १० सेर।

प्रक्षेप द्रव्य--धावे के फूल ६४ तोले, नागरमोथा, मुलहठी खरैंटी, हरड़, बहेड़ा, आमला, हलदी, दारुहलदी, जीरा, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, अजमोद, अजवायन: और बेलगिरी प्रत्येक ४ तोले।

सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग—बन्ध्या रोग के लिए उत्तम है। मात्रा-१। से २॥ तोला।

विशेष द्रष्टव्य---लक्ष्मणा बूटी आजकल अज्ञात है। अनेक वैद्य इसके स्थान पर सफेद फूल की कटहल का प्रयोग करते हैं। मयूरशिखा, शिवलिंगी के बीज और जियापोता ये तीन औषधियां सन्तानोत्पत्ति के लिए उपयोगी मानी जाती है। ये पृथक् पृथक् अथवा मिला कर लक्ष्मणा के स्थान पर आसव में डाल कर परीक्षण करने चाहिए

इसके निर्माण में जल द्विगुण करें। गुड़ ५-५ सेर करके दो बार में मिलाए।

बालरोगाधिकार

अरविन्दासव

(भैषज्यरत्नावली: आयुर्वेदसंग्रह)

अरविन्दमुशीरञ्च काश्मीरं नीलमुत्पलम् ।
मञ्जिष्ठैला बला मांसीरम्बुदं शारिवां शिवाम्॥
विभीतकवचा धात्रीः शठीं श्यामां सनीलिनीम् ।
पटोलं पर्पटं पार्थं मधूकं मधुकं मुराम् ॥
पलमानेन संगृह्य द्राक्षायाः पलविंशतिम् ।
धातकीं षोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत् ॥
शर्करायास्तुलास्तत्र तुलार्धं माक्षिकस्य च ।
मास संस्थापयेद् भाण्डे मृत्तिकापरिनिर्मिते ॥
बालानां सर्वरोगघ्नो बलपुष्टयग्निवर्धनः ।
अरविन्दासवः प्रोक्तश्चायुष्यो ग्रहदोषहृत् ॥

प्रक्षेप द्रव्य—सफेद कमल, खस, केसर, नीलोत्फल, मंजिष्ठा, छोटी इलायची, बलामूल, जटामांसी, नागरमोथा, काली-सारिवा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, वचा, कचूर, काली निशोथ,

नील के बीज, पटोलपत्र, पित्तपापड़ा, अर्जुनछाल, मुलहठी, महुआ क फूल, तथा मुरा (अभाव में जटामांसी) प्रत्येक ४ तोले; मुनक्का १ सेर; और धावे के फूल ६४ तोले।

जल—२६ सेर।

मधुर द्रव्य—चीनी ५ सेर, मधु २॥ सेर।

सन्धानावधि—एक मास।

प्रयोग—यह आसव बालकों के सब रोगों का नाशक है। अग्नि, बल और पुष्टि का देने वाला है। छोटे बालकों को होने वाले अस्थिमार्दव (Rickets) और शोष रोग में इसके उपयोग से अच्छा लाभ होता है इसके अतिरिक्त स्त्रियों के रक्तप्रदर तथा पुरुषों के उष्णवात या पूयमेह रोग में भी यह उपकारी है। मात्रा—बालकों को ३-६ माशे; पूर्णवयस्क को १। से २॥ तोला देना चाहिये।

विशेष द्रष्टव्य—जल को उबाल कर ३२ शतांश तक ठण्डा करके चीनी का घोल बनाएं। मुनक्का को थोड़े पानी में क्वाथ बना कर लकड़ी के मूसल से पीस देना चाहिए। शेष द्रव्यों को जौकुट करके डालें। किण्व एक सेर मिलाए।

विषाधिकार

शिरीषारिष्ट

(भैषज्य रत्नावली)

पचेत् तुलार्धं द्विद्रोणे शिरीषस्य जले सुधीः ।
पादशेषे कषायेऽस्मिन् क्षिपेद् गुडततुलाद्वयम् ॥
कृष्णां प्रियङ्गुं कुष्ठैला नीलिनीं नागकेशरम् ।
रजन्यौ पलमानेन दद्यात्त्र च नागरम् ॥
मासादूर्ध्वं जातरसं यथामात्रं प्रयोजयेत् ।
शिरीषारिष्ट इत्येष विषव्यापद् विनाशनः ॥

काथ्य द्रव्य—सिरस छाल २॥ सेर ।

काथ्य जल—२६ सेर ।

शेष जल—६ सेर ८ छटांक ।

मधुर द्रव्य—गुड १० सेर ।

प्रक्षेप द्रव्य—पिप्पली, प्रियङ्गु, कूठ, छोटी इलायची, नील का पंचाङ्ग, नागकेसर, हल्दी, दारुहल्दी, और सोंठ, प्रत्येक

४ तोले।

सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग—विविध विषविकारों का नाशक है। मात्रा-१। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—जल द्विगुण करें। गुड़ २॥-२॥ सेर के परिमाण में दो तीन वार करके मिलाएं। किण्व आध सेर डालें।

रसायन-वाजीकरणाधिकार

दशमूलारिष्ट

(शाङ्गधरसंहिता, गदनिग्रह; भैषज्यरत्नावली)

पर्ण्यौ बृहत्यौ गोकण्टो बिल्वोऽग्निमन्थकोऽरलुः ।
पाटला काश्मरी चेति दशमूलमिहोच्यते ॥
दशमूलानि कुर्वीत भागैः पञ्चपलैः पृथक् ।
पंचविंशत्पलं कुर्याच्चित्रकं पौष्करं तथा ॥
कुर्याद् विंशत्पलं लोध्रं गुडूची तत्समा भवेत् ।
पलैः षोडशभिर्धात्री रविसंख्यैर्दुरालभा ॥
खदिरो बीजसारश्च पथ्या चेति पृथक् पलैः ।
अष्टभिर्गुणितैः कुष्ठं मंजिष्ठा देवदारु च ॥
विडङ्गं मधुकं भार्ङ्गी कपित्थोऽक्षः पुनर्नवा ।
चव्यं मांसी प्रियङ्गुश्च सारिवा कृष्णजीरकम् ॥
त्रिवृता रेणुकं रास्ना पिप्पली क्रमुकः शटी ।
हरिद्रा शतपुष्पा च पद्मकं नागकेशरम् ॥
मुस्तमिन्द्रयवः शृङ्गी जीवकर्षभकौ तथा ।
मेदा चान्या महामेदा काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके ॥

कुर्यात् पृथग् द्विपलिकान् पचेदष्टगुणे जले ।
चतुर्थांशं शृतं नीत्वा मृद्भाण्डे सन्निधापयेत् ॥
ततः षष्टिपलां द्राक्षां पचेन्नीरे चतुर्गुणे ।
त्रिपादशेषं शीतं च पूर्वक्वाथे शृतं क्षिपेत् ॥
द्वात्रिंशत् पलिकं क्षौद्रं दद्याद् गुडचतुः शतम् ।
त्रिंशत् पलानि धातक्याः कंकोलं जलचन्दने ॥
जातीफलं लवङ्गं च त्वगेलापत्रकेशरम् ।
पिप्पली चेति संचूर्ण्य भागैर्द्विपलिकैः पृथक् ॥
शाणमात्रां च कस्तूरीं सर्वमेकत्र निक्षिपेत् ।
भूमौ निखातयेद् भाण्डे ततो जातरसं पिबेत् ॥
कतकस्य फलं क्षिप्त्वा रसं निर्मलतां नयेत् ।
ग्रहणीमरुचिं शूलं श्वासं कासं भगन्दरान् ॥
वातव्याधिं क्षयं छर्दिं पाण्डुरोगं च कामलाम् ।
कुष्ठान्यर्शांसि मेहांश्च मन्दाग्निमुदराणि च ॥
शर्करा मश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं धातुक्षयं जयेत् ।
कृशानां पुष्टिजननो बन्ध्यानां गर्भदः परः ॥
अरिष्टः दशमूलाख्यः तेजःशुक्रबलप्रदः ॥

क्वाथ्य द्रव्य—दशमूल की प्रत्येक औषधि २०-२० तोले, चित्रकमूल १। सेर, पोहकरमूल १। सेर, लोध १ सेर, गिलोय १ सेर, आमला ६४ तोले, धमासा ४८ तोले, खैरछाल ३२ तोला, विजैसार ३२ तोले, हरड़ ३२ तोले, कूठ, मजीठ, देवदारु, विडङ्ग, मुलहठी, भारंगी, कैथ, बहेड़ा, पुनर्नवा, चव्य, जटामांसी, प्रियङ्गु, सारिवा, कालाजीरा, निशोथ, संभालू के

बीज, रास्ना, पिप्पली, सुपारी, कचूर, हल्दी, सौंफ, पद्माक, नागकेसर, नागरमोथा, इन्द्रजौं, काकड़ासिंगी, और अष्टवर्ग की प्रत्येक औषधि, सब ८-८ तोले।

काथ्य जल—२ मन २४ सेर।
शेष जल—२६ सेर।
काथ्य द्रव्य (२)—मुनक्का ३ सेर।
काथ्य जल—१२ सेर।

शेष जल—९ सेर। दोनों काथों को मिला दें; कुल काथ ३५ सेर तैयार हुआ।

मधुर द्रव्य—गुड़ २० सेर, शहद १ सेर १० छटांक।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल १॥ सेर, शीतलचीनी, नेत्रवाला, श्वेतचन्दन, जायफल, लौंग, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेसर, तथा पिप्पली प्रत्येक ८ तोले और कस्तूरी ३ माशा।

सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग—यह अरिष्ट वात और श्लेस्म विकारों में हितकर है। पित्त का अनुबन्ध हो या उसकी प्रधानता हो तो इस का उपयोग कम करना चाहिए।

दशमूलारिष्ट के सेवन से संग्रहणी, अरुचि, श्वास, कास, गुल्म, भगन्दर, वातरोग, क्षय, वमन, पाण्डु, कामला, कुष्ठ, अर्श, मन्दाग्नि, प्रमेह, उदररोग, मूत्रकृच्छ्र, धातुक्षय

आदि दोष दूर होते हैं।

यह स्त्रियों के गर्भाशय को शुद्ध करता है। इस लिए प्रसव के बाद तीन चार दिन दशमूल क्वाथ का सेवन करवाने के पश्चात् इसका प्रयोग किया जाता है। इस से रोग प्रतिरोधक शक्ति बढती है, गर्भाशय शुद्ध होता है और प्रसूत ज्वर से रक्षा होती है। वन्ध्या स्त्री को इसके सेवन से लाभ होता है।

रोगनिरोधक शक्ति को बढा कर यह भगन्दर तथा नाड़ी व्रण आदि को अच्छा करता है।

वातशामक होने के कारण शिरःशूल,कोष्ठशूल, मक्कल शूल, आदि में हितकारी है।

वातिक कास और श्वास रोग में भी इसका अच्छा उपयोग होता है। मात्रा—१। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—प्रथम क्वाथ का जल द्विगुण करें; पहिले १० सेर गुड़ तथा लिखित मात्रा में मधु मिलाएं। सन्धान से मिठास कम होने पर शेष गुड़ मिलाएं। किण्व २॥ सेर डालें। कस्तूरी आसव को छान कर बोतलों में डालते समय मद्य और जल में घोल कर मिलानी चाहिये।

शार्ङ्गधरसंहिता में द्राक्षा ६० पल के स्थान पर ६४ पल है और शृङ्गी के स्थान पर शुण्ठी का पाठ है।

पञ्चसायक

(बृहद् योगतरंगिणी)

द्राक्षा तुलामुपादाय जले द्रोणचतुष्टये ।
पक्त्वा चतुर्थशेषं तु तं कषायमुपाहरेत् ॥
दत्त्वा गुडतुलां तत्र धातकी प्रस्थमेव च ।
निखाय स्थापयेत् भूमौ यावत्पाशो वरो भवेत ॥
ततस्तत्सारमादाय वारुणीयन्त्रतः शनैः ।
पुनस्तं वारुणीयन्त्रे समारोप्य तमाहरेत् ॥
एवं तु दशधा सारं पौनः पुन्येन संहरेत् ।
ततस्तस्मिंश्चतुर्जातं जातीकोशलवङ्गकम् ॥
कर्पूर कुंकुमं चापि यथालाभं नियोजितम् ।
तं यथाग्निबलं मर्त्यः पिबेत्सर्वक्षयापहम् ॥

क्वाथ्य द्रव्य—मुनक्का ५ सेर ।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर ।

शेष जल—१३ सेर ।

मधुर द्रव्य—गुड़ ५ सेर ।

प्रक्षेप द्रव्य—धातकी पुष्प ६४ तोले ।

सन्धानावधि—बीस दिन, अथवा सन्धान पूर्ण होने तक ।

उपयोग—इसके सेवन से सब प्रकार की क्षीणता और निर्बलता दूर होती है, मन प्रसन्न और प्रफुल्ल होता है । मात्रा—१ से २ तोले ।

विशेष द्रष्टव्य--जल द्विगुण लेकर पांच सेर गुड़ मिला कर सन्धान करना चाहिये। सन्धान हो जाने पर छान कर छोटी-इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेसर, जायफल, लवङ्ग, कर्पूर, और केसर यथा लाभ डाल कर वारुणी यन्त्र से अर्क खींचलें। इस प्रकार दस वार करना चाहिये।

पिप्पलीमूलाद्यरिष्ट

(गदनिग्रह)

समूला पिप्पली शृङ्गी बृहती ह्यश्मभेदकः।
पाटला देवकाष्ठञ्च श्वदंष्ट्रा ह्यभया तथा॥
एकैकात्षोडशपलं कोलानामाढकं तथा।
दन्ती चित्रक मूलानां पञ्चविंशपलं पृथक्॥
चतुर्गुणजले द्रोणे पचेदर्धावशेषितम्।
शीतं समापयेद् भाण्डे प्रलिप्ते मधुसर्पिषा॥
खण्डस्य द्वे शते शुद्धे तद्वल्लोहं समावपेत्।
पत्रीकृतं तिलोत्सेध सूक्ष्म चूर्णान्यमूनि च॥
प्रियङ्गु पिप्पली लोध्रं मृद्विका सैलवालुकम्।
क्रमुक शतपुष्पां च निम्बं तेजोवतीमपि॥
पालिकान् देवदारु च खदिरस्य चतुःपलम्।
क्षौद्र प्रस्थद्वयं चापि समासिच्य घटे शुभे॥
सौम्य पुष्पे तथा हस्ते रोहिण्यामुत्तरासु च।
दशरात्रिस्थितः पेयोऽरिष्ट आत्रेयपूजितः॥
अश्विभ्यां कथितं पूर्वं रसायनमिदं शुभम्।

यथाग्निबलमात्रां तु पिबेदस्य हिताशनम् ॥
धन्यं पुष्टिकरं मेध्यं बलीपलितनाशनम् ।
क्षय कास ज्वर प्लीह कुष्ठगुल्माग्नि मार्दवे ॥
श्वित्रेऽश्मर्यां तथोदर्दे विद्रध्यामन्त्रवृद्धिषु ।
पाण्डुरोगोदरस्तन्यरेतो दोषे च शस्यते ॥
नाडीपिडकयोर्दोषे भूतापस्मारसङ्करे ।

क्वाथ्य द्रव्य—पिप्पलीमूल, काकड़ासिङ्गी, बड़ी कटहली; पाषाणभेद, पाढल, देवदारु, तथा बड़ी हरड़ प्रत्येक १३ छटांक; बेरी की जड़ या छाल ३। सेर; दन्तीमूल और चित्रकमूल प्रत्येक १। सेर।

क्वाथ्य जल—३ मन ८ सेर।

शेष जल—१ मन २४ सेर।

मधुर द्रव्य—चीनी १० सेर; मधु ६४ तोले।

प्रक्षेप द्रव्य—फूल प्रियङ्गु, पिप्पली, लोध, मुनक्का, एलवालुक, सुपारी, सौंफ, नीम की छाल, तेजबल और देवदारु, प्रत्येक ४ तोले; खदिर छाल २० तोले; सूक्ष्म लौहचूर्ण १० सेर।

सन्धानावधि—१० दिन।

उपयोग—यह पुष्टिकर, मेधावर्धक, बलीपलितनाशक उत्तम रसायन है। इसके सेवन से कास, अग्निमान्द्य, पाण्डु और विविध उदर रोग दूर होते हैं। मात्रा-१। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—इस में मधुर द्रव्यों का परिमाण अतिन्यून है। अतः निर्दिष्ट मात्रा में चीनी और मधु प्रथम बार मिला

कर जव सन्धान से घोल में मिठास कम होजाए तो इतने ही परिमाण में चीनी और मधु दुबारा मिलाना चाहिये। सुराबीज १ सेर मिलाएं। इसमें लौहचूर्ण की मात्रा अत्यधिक है।

महाद्राक्षासव

(योगचिन्तामणि)

द्राक्षायाश्च पलशतं सितायास्तच्चतुर्गुणम् ।
कर्कन्धूमूलं तस्यार्धं मूलार्धं धातपुष्पकी ॥
क्रमुकं च लवङ्गश्च जातीपुष्पफलानि च ।
चातुर्जातं त्रिकटुकं मस्तकी करहाटकम् ॥
आकल्लकं रसं कुष्ठं पलानि दश चाहरेत् ।
एभ्यश्चतुर्गुणं तोयं भाण्डे चैव विनिक्षिपेत् ॥
स्थापयेद् भूमिमध्ये तु चतुर्दश दिनानि च ।
ततो जातरसं शुद्धं क्षिपेत् कच्छपयन्त्रके ॥
धराधो निक्षिपेत्तस्य मृगनाभिं सकुंकुमम् ।
एतत् सिद्धं क्षिपेद् धीमान् काचभाण्डे निधापयेत् ॥
त्रिदिनेषु व्यतीतेषु तत्पेयं पलसंख्यया ।
मध्यान्हे द्विपलं ग्राह्यं सन्ध्या काले चतुष्पलम् ॥
गरिष्ठं स्निग्धमाहारं भक्षयेदस्य सेवकः ।
वीर्याभिवृद्धिः प्रभवेन्नराणां रामा सुवश्या भवतीह लोके ।
त एव धन्या मनुजा नरेन्द्रा द्राक्षासवं ये किल सेवयन्ति ॥

औषध द्रव्य—मुनक्का ५ सेर; बेरी की जड़ २॥ सेर,

धावे के फूल १। सेर, सुपारी, लौंग, जावित्री, जायफल, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेसर, पिप्पली, सौंठ, मरिच, रूमीमस्तकी, मैनफल, अकरकरा, बोलगोंद, और कुष्ठ प्रत्येक आध सेर।

जल—१ मन १५ सेर।

मधुर द्रव्य—चीनी २० सेर।

सन्धानावधि—चौदह दिन। इसके पश्चात् ८ तोले केसर तथा १ तोला कस्तूरी की पोटली वारुणीयंत्र के मुख पर विधिपूर्वक रख कर अर्क खींच लें। अर्क को तीन दिन तक कांच के पात्र में बंद रखें ; फिर सेवन करें।

उपयोग—यह आसव कास, श्वास, राजयक्ष्मा, निर्बलता, निद्रानाश: मानसिक श्रम, अरुचि, मन्दाग्नि आदि रोगों को दूर कर बल, वीर्य, और तेज की वृद्धि करता है। मात्रा २॥से४ तोले तक; दिन में दो या तीन बार लें। इसका सेवन करते समय स्निग्ध और मधुर, भोजन करना चाहिये।

विशेष द्रष्टव्य—चीनी १०-१० करके दो बार में मिलानी चाहिये। किण्व २॥ सेर डालें।

मृतसंजीवनी सुरा

(भैषज्य रत्नावली)

नवं गुडञ्च संगृह्य शतमेकं पलं तथा ।
बाबरीत्वचमादाय बदरीत्वचमेव च ॥

प्रस्थ प्रस्थं प्रदातव्यं पूगं देयं यथोदितम् ।
लोध्रञ्च कुडवं दत्त्वा चार्द्रकस्य पलद्वयम् ॥
तोयमष्टगुणं दत्त्वा गुडं संगालयेत् सुधीः ।
प्रथमे चार्द्रकं दद्यात् द्वितीये बाबरीत्वचम् ॥
तृतीये बदरीं दत्त्वा गोलयित्वा भिषग्वरः ।
मुखे शरावकं दत्त्वा यत्नात् कृत्वा च बन्धनम् ॥
मुखसंबन्धन कृत्वा स्थापयेद् दिनविंशतिम् ।
मृण्मये मोचिकायंत्रे मयूराख्येपि यंत्रके ॥
यथाविधि प्रकारेण मन्दमन्देन वन्हिना ।
चुल्लीमध्ये विधातव्यं मृत्तिकादृढभाजने ॥
तदौषध च तन्मध्ये समुद्धृत्य विनिक्षिपेद् ।
नलस्य युगलं दत्त्वा कुंभौ च गजकुंभवत् ॥
कुंभमध्ये विधातव्यं पूगञ्च सैलवालुकम् ।
देवदारु लवङ्गञ्च पद्मकोशीरचन्दनम् ॥
शतपुष्पा यमानी च मरिचं जीरकद्वयम् ।
शठी मांसी त्वगेला च जातीफलमुस्तकम् ॥
ग्रन्थिपर्णी तथा शुण्ठी मेथी मेषी च चन्दनम् ।
एषां चार्धपलान् भागान् कुट्टयित्वा विनिक्षिपेत् ॥
यथाविधि प्रकारेण चालनं दापयेत् सुधीः ।
बुद्धिमान् सौजलं कृत्वा उद्धरेद् विधिवत् सुराम् ॥
एतन्मद्यं पिबेन्नित्यं यथाधातुवयःक्रमम् ।
आरोग्यजननं देह दार्ढ्यकृत् बलवर्धनम् ॥
धात्वग्निस्मृतिकृद् वीर्यशुक्रकृत् वातनाशनम् ।
बलपुष्टिकरञ्चैव कामसंदीपनं परम् ॥

दश स्त्रियो रमेन्नित्यमानन्दमुपजायते ।
रणे तेजोमयः सद्यो यथा भीमपराक्रमः ॥
नातः परतरं किंचिद्रणोत्साहप्रदं महत् ।
देवासुरैर्युद्धकाले शुक्रेण परिकीर्तितिम् ॥

औषध द्रव्य—कीकर की छाल, बेरी की छाल, सुपारी प्रत्येक ६४ तोले; लोध्र १६ तोले और अदरक ८ तोले।

जल—१ मन १६ सेर।

मधुर द्रव्य—गुड़ ५ सेर।

सन्धानावधि—बीस दिन। जल में गुड़ घोल कर अदरक तथा कीकर और बेरी की छाल क्रमशः घोल में मिलानी चाहियें।

प्रक्षेपद्रव्य—सुपारी, एलवालुक, देवदारु, लौंग, पद्माक, खस, श्वेत चन्दन, सौंफ, अजवायन, मिरच, कालाजीरा, श्वेत जीरा, कचूर, बालछड़, दालचीनी, इलायची छोटी, जायफल, नागरमोथा, गठिवन, सोंठ, मेथी, मेढासिंगी, और लाल चन्दन प्रत्येक २ तोला।

विशेष द्रष्टव्य—इसके पश्चात् प्रक्षेप की औषधियों का सूक्ष्म चूर्ण कपड़े की अच्छी ढीली पोटली में बांध कर यन्त्र के गले में लटका दें। और वारुणी यन्त्र से अर्क निकाल लें।

उपयोग— यह वातनाशक, पुष्टिकारक, कमोद्दीपक वीर्यस्तंभक तथा रति और आनन्द वर्धक है। सन्निपात आदि ज्वरों में हृदयावसाद और नाडीक्षीणता को दूर करने में अग्नि प्रशस्त है। मात्रा—१ से २ तोले।

सारस्वतारिष्ट

(भैषज्य रत्नावली)

समूलपत्रशाखाया ब्राह्म्या ब्राह्ममुहूर्तके ।
गृहीत्वा विंशतिपलं पुष्ययोगे शतावरीः ॥
विदारिकाभयोशीराण्यार्द्र कञ्च तथा मिसिः।
पञ्च पञ्च पलान्येषां जलद्रोणे पचेद् भिषक् ॥
पादावशेषे विस्राव्य रसं वस्त्रेण गालयेत् ।
माक्षिकस्य दशपलं सितायाः पञ्च विंशतिः ॥
धातकी पञ्चपलिका रेणुका त्रिवृता कणा ।
देवपुष्पं वचा कुष्ठं वाजिगन्धा विभीतकी ॥
अमृतैला विडङ्गत्वक् प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ।
क्वाथे तस्मिन समस्तानि समाक्षिप्य प्रयत्नतः।
स्वर्णकुम्भे निदध्याद्वा भाजने मृण्मयेऽपिवा ।
स्वर्णस्य तनु पत्रञ्च क्षिप्त्वास्मिन् कर्षसम्मितम् ॥
मासाज्जातरसं दृष्ट्वा हेमपत्रे क्षयंगते ।
वाससा च परिस्राव्य स्थापयेद् घृतभाजने ॥
सारस्वताभिधोऽरिष्ट एषोऽमृतसमः पुरा ।
शिष्याणामुपकारार्थं धन्वन्तरिविनिर्मितः ॥
आयुर्वीर्यं स्मृतिं मेधां बलं कान्तिं विवर्धयेत् ।
वाग्विशुद्धिकरो हृद्यो रसायनवरः स्मृतः ॥
बालकानाञ्च यूनाञ्च वृद्धानाञ्च सदा हितः ।
नरनारीहितो नित्यं परमोजस्करो मतः ॥
वारयेत् स्वरकार्कश्यं तथा चास्पष्टभाषणम् ।

स्वरं परभृतस्येव जनयेत् सेवनात् सदा ॥
रजोदोषेण दुष्टानां योषितां शुक्रदोषिणाम् ।
पुंसाञ्चापि शुभकरः सर्वदोषहरो मतः ॥
अत्यध्ययनगीतादि क्षीणस्मृतिबला नराः ।
लभन्ते चित्तसन्तोषं स्मृतिञ्चास्य निषेवणात्॥
पयसा सह पातव्योऽरिष्टोऽयं शाणमानतः ।
मासाभ्यां रोगहृच्चापि शरदा सर्वसिद्धिदः॥
अकालमृत्योर्हरणे यदीच्छा
नारीप्रियत्वं यदि वाञ्छितं स्यात् ।
वाक् शुद्धिधैर्यस्मृतिलब्धिरिष्टा
निषेव्यतां तद्ध्यमृत भवद्भिः॥

क्वाथ्य द्रव्य—मूल पत्र तथा शाखा सहित ब्राह्मी १ सेर; शतावरी, बिदारीकन्द, हरड़, खस, अदरक, और सौंफ, प्रत्येक २० तोले ।

क्वाथ्य जल - १२ सेर ।

शेष जल—३ सेर ४ छटांक !

मधुर द्रव्य—चीनी १। सेर; मधु आध सेर ।

प्रक्षेप द्रव्य—धावे के फूल २० तोले, संभालू के बीज, निशोथ, पिप्पली, लौंग, वचा, कुष्ठ, अश्वगन्धा, बहेड़ा, गिलोय, छोटी इलायची, वायविडङ्ग, दालचीनी और सूक्ष्म स्वर्णपत्र; प्रत्येक १ तोला ।

सन्धानावधि—एक मास; स्वर्णपत्रों के लीन होजाने पर छान लें ।

उपयोग—यह अरिष्ट आयु, वीर्य, धृति, मेधा, बल तथा कांति को बढ़ाता है और उत्तम हृद्य है। बालक, युवा और बृद्ध; पुरुष और स्त्री, सब के लिए समान रूप से हित कारक है। स्वर की कर्कशता और अस्पष्टता को दूर कर यह अरिष्ट स्वर को मधुर बनाता है। स्त्रियों के रजोदोष और पुरुषों के शुक्र दोषों को नष्ट करता है। अति-अध्ययन विचार और गान आदि कारणों से स्मृति क्षीण होगई हो तो इसके सेवन से लाभ होता है। दिमागी काम करने वाले अध्यापक, वकील, बैरिस्टर व विद्यार्थियों के लिए यह अमृत के समान उपयोगी है।

वाणी की अस्पष्टता, बुद्धि की मन्दता, स्मरणशक्ति की निर्बलता तथा उन्माद: और अपस्मार आदि रोगों में यह अरिष्ट बहुत लाभदायक है। मात्रा—१। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—प्रथम बार चीनी और मधु आधे परिमाण में मिलाएं। संधान प्रारंभ होजाने पर मिठास न्यून हो जाए तो शेष चीनी और मधु को मिला कर संधान पूर्ण करना चाहिए। किण्व १ पाव डालें।

सुवर्ण का सूक्ष्म वर्क पिप्पली, लौंग, इलायची और दाल-चीनी के साथ खरल करके कपड़े की थैली में भर कर अरिष्ट में लटका देवें। अरिष्ट तैयार होने पर छान कर उसमें थैली की औषध को मसल कर मिलाएं। फिर अरिष्ट को एक मास तक कांच के पात्र में बन्द करके रखें। पश्चात् ऊपर से नितरे भाग

को बोतलों में भर लेवें।

अथवा इस पुस्तक के पूर्वार्ध में लिखी विधि से स्वर्ण मिलाएं।

भृङ्गराजासव

(गदनिग्रह)

भृङ्गराजरसद्रोणं गुडस्य द्वितुलां तथा।
हरीतकीनां प्रस्थार्धं स्निग्धे भाण्डे निवेशयेत्॥
पक्षादूर्ध्वं पिवेदेनं मात्रया च यथाबलम्।
जाते ह्यस्मिन् पुनर्दत्त्वा पिप्पल्याश्च पलद्वयम्॥
जातीफलं लवङ्गानि त्वगेलापत्रकेशरम्।
धातुक्षयं जयेत् पीतः कासं पञ्चविधं तथा॥
कृशानां च महापुष्टिं कुरुते च महाबलम्।
कामवृद्धिं करोत्येव वन्ध्यानां पुत्रदो भवेत्॥

औषधियां—भांगरे का रस १३ सेर, और हरीतकी-चूर्ण ३२ तोले।

मधुर द्रव्य—गुड़ १० सेर।

प्रक्षेप द्रव्य—पिप्पली, जायफल, लौंग, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, और नागकेसर; प्रत्येक ८ तोले।

संधानावधि—एक मास।

उपयोग—भृङ्गराजासव से जीर्ण मलबन्ध दूर होता है।

मल शुद्धि होने से आंतों में विष की उत्पत्ति नहीं होती और कोष्ठ में मल संचय के कारण उत्पन्न विष नष्ट हो जाता है। जिससे कि वमन, शिरः शूल, कटिशूल, निद्रानाश, सूक्ष्मज्वर, हृदय की शिथिलता, मानसिक अक्षमता, यकद् व प्लीहा की वृद्धि, प्रमेह, पाण्डुता, विविध त्वक्रोग, दन्तव्रण (पायोरिया) नेत्ररोग, और समय से पूर्वक ही केशों का श्वेत हो जाना आदि रोगों से रक्षा होती है। यह उत्तम धातुपोषक तथा बलकारक है। इससे गर्भाशय सन्तान धारण करने के योग्य होता है। मात्रा-१। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—भांगरे के रस और हरीतकीचूर्ण में २॥ सेर गुड़ घोल कर संधान करें, ४-५ दिन पश्चात् गुड़ के आसवमें परिणत होजाने पर २॥ सेर गुड़ और मिला कर पन्द्रह दिन तक संधान करें। फिर २॥ सेर गुड़ और डाल कर संधान पूरा करें। आसव में मिठास कम प्रतीत हो तो उसे छानकर शेष गुड़ भी मिला दें। और उपयुक्त पात्र में रख लें।

नारिकेलासव

(गदनिग्रह)

नारिकेलोदकं चैव द्रोणमात्रं प्रदापयेत्।
इक्षो रसस्य द्रोणार्धं शाल्मल्या रसप्रस्थकम्॥
दशमूलरसस्यापि प्रस्थमात्रं तथैव च।
घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मध्ये चूर्णं निवेशयेत्॥

चातुर्जातक धातक्योः पलान् षोडशसंख्यया।
शाणमात्रा तु कस्तूरी केशरं तगरं तथा ॥
चन्दनं देवपुष्पं च पल मात्रं पृथक् पृथक् ।
मासादूर्ध्वं पिवेच्चाशु रूपे कामसमो भवेत् ॥
वृद्धोऽपि तरुणीं गच्छेत् षण्ढोऽपिपुरुषायते ।
बलीपलितसत्यक्तः शतायुश्च भवेन्नरः ॥
नारिकेलासवः प्रोक्तः शम्भुना परमेष्ठिना ॥

औषध द्रव्य—नारियल का जल १३ सेर; ईख का रस ६ सेर ८ छटांक, सेमल की मूसली का रस १३ छटांक, दशमूल का रस या क्वाथ १३ छटांक।

मधुर द्रव्य—कुछ नहीं. ईख के रस से मीठे का प्रयोजन भी सिद्ध होजायगा।

प्रक्षेप द्रव्य—चातुर्जातक मिलित १३ छटांक, धातकीपुष्प १३ छटांक, कस्तूरी ३ माशा; केसर, तगर, श्वेतचंदन और लौंग, प्रत्येक ४ तोले।

संधानावधि—एक मास।

उपयोग—यह रूपलावण्य वर्धक और अत्यन्त वाजीकरण योग है। इसके सेवन से यौवन चिरकाल तक स्थिर रह सकता है। मात्रा—१। से २॥ तोला।

विशेष द्रष्टव्य—प्रक्षेपद्रव्यों में से कस्तूरी, केसर आदि सुगन्धित द्रव्य पूर्वार्ध में निर्दिष्ट विधि के अनुसार मिलाएं।

लवङ्गासव

(गदनिग्रह)

देवपुष्पं वराङ्गञ्च केशरं पृथुकां तथा ।
कलौंजीं मर्कटीबीजं मूसलीद्वयगोक्षुरम् ॥
बलाबीजानि पोस्तत्वग्बीजं च करहाटकम् ।
पृथक् पृथक् प्रकुर्वीत पलानां पञ्चकं तथा ॥
चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा कुर्यात् पादावशेषितम्।
शठी च पिप्पलीमूलं मरिचं साश्वगंधकम ॥
शुण्ठी जातीफलं चापि कुंकुमं जातिपत्रिका।
आकल्लक कबाबं च ह्यैला कृष्णागुरुस्तथा॥
तालीस चन्दनं चैव विजया क्षीरकन्दका ।
वृद्धदारुभवं बीज क्रमुकं वशराचना ॥
धत्तूरस्य च बीजानि पलमात्राणि कारयेत् ।
सर्वमेकत्र संचूर्ण्य पूते शीते विनिक्षिपेत् ॥
द्वात्रिंशत् पलिक क्षौद्रं धातक्याश्च पलाष्टकम्।
तुलार्धं तु गुडाज्जीर्णात् घृतभाण्डे विनिक्षिपेत्॥
मासादूर्ध्वं पिबेदेनं प्रमेहं हन्ति दुर्जयम् ।
धातुक्षय जयेच्छीघ्रं लवंगाद्यासवस्त्वयम् ॥

क्वाथ्य द्रव्य—लौंग, दालचीनी; नागकेसर, कालाजीरा, कलौंजी, कौंच के बीज, दोनों मूसली, गोखरु; खैंरटी के बीज, पोस्त के छिलके, पोस्तदाना, अकरकरा, प्रत्येक २०-२० तोले ।

क्वाथ्य जल—१ मन १२ सेर।

शेष—१३ सेर।

मधुर द्रव्य—पुराना गुड़ २॥ सेर; शहद १ सेर १० छटांक।

प्रक्षेप द्रव्य—कचूर, पिप्पलीमूल, मरिच, अश्वगंधा, सोंठ, जायफल, काश्मीरी केसर, जावित्री, अकरकरा, कबाबचीनी, छोटी इलायची, काला अगर, तालीशपत्र, सफेद चंदन भांग के बीज, विदारीकन्द, विधारे के बीज, सुपारी, वंशलोचन, धतूरे के बीज प्रत्येक ४ तोले, और धावे के फूल ३२ तोले।

संधानावधि—एक मास।

उपयोग—धातुक्षय तथा प्रमेह को दूर कर बल और वीर्य की वृद्धि करता है। मात्रा १। से २॥ तोला;

विशेष द्रष्टव्य—योग में निर्दिष्ट मधुर द्रव्यों के आसव में परिणत होजाने पर उन्हें इतनी ही मात्रा में दुबारा डालना चाहिये। किण्व आध सेर मिलाएं।

रसायनारिष्ट

(गदनिग्रह)

पिप्पलीमूलाद्यरिष्ट और रसायनारिष्ट के यौगिक द्रव्यों में कोई भेद नहीं है। केवल शब्दों का ही उलट फेर है। अतः रसायनारिष्ट का विस्तार से वर्णन नहीं किया गया। इसके

निर्माण और उपयोग के लिए पृष्ठ संख्या २२४ पर पिप्पलीमूलाद्य-रिष्ट का पाठ देखें।

हरीतक्यासव

(गदनिग्रह)

हरीतकीनां प्रस्थार्धं धात्रीप्रस्थद्वयं तथा।
दशमूल शतार्धं च पौष्करं च तदर्धकम्॥
तत्तुल्यं चित्रकं दद्याच्चित्रकार्धा दुरालभा।
गुडूच्या विंशतिपलं विशाला पलपञ्चकम्॥
खदिरस्य पलान्यष्टौ तदर्धं बीजपूरकम्।
मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं कपित्थं देवदारुकम्॥
विडङ्गं चविका रोध्रं भार्ङ्गी स्यादेलवालुकम्।
संवर्तकं पिप्पलीं च क्रमुकं शठिं सुप्रभम्॥
प्रियङ्गु सारिवा मांसी नागकेसररेणुकम्।
त्रिवृतां रजनीं रास्नां मेषशृङ्गी पुनर्नवाम्॥
शताह्वां रोहिणीं दन्तीं पलांशान् क्वाथयेज्जले।
चतुर्थपादशेषे तु द्राक्षां षष्टिपलां क्षिपेत्॥
त्रिंशत् पलानि धातक्या गुडाच्छुद्धाच्चतुः शतम्।
द्वात्रिंशत्पलिकं क्षौद्रं सर्वमेकत्र कारयेत्॥
भाण्डे पुराणे सुस्निग्धे मांसीमरिचधूपिते।
धूपिते च पुनर्दद्यात् पिप्पलीनां पलद्वयम्॥
जातीफलं लवङ्गं च त्वगेलापत्रकेसरान्।
कर्षमात्रां च नेपालीं दत्वा पक्षं निधापयेत्॥
कतकफलचूर्णेऽपि क्षिप्ते निर्मलता भवेत्।

पश्चादूर्ध्वं पिबेद्यस्तु मात्रया च यथाबलम् ॥
धातुक्षयं जयेत् पीतः कासं पञ्चविधं तथा ।
अर्शांसि षट्प्रकाराणि तथाष्टावुदराणि च॥
प्रमेहं च महाव्याधिमरुचिं पाण्डुतां तथा ।
सर्वान् वातान् तथाप्यामं श्वासं छर्दिं तथैव च॥
अष्टादशैव कुष्ठानि शोषं शूलं भगन्दरम् ।
शर्करां मूत्रकृच्छ्रं च ह्यश्मरीं च विनाशयेत्॥
कृशानां च महापुष्टिं कुरुते च महाबलम् ।
महावेगो महातेजा महावीर्यबलोद्धतः ॥
कामपुष्टिं करोत्येष वन्ध्यानां पुत्रदो भवेत् ॥

क्वाथ्य द्रव्य—हरड़ ३२ तोले, आमला १ सेर १० छटांक, दशमूल मिलित २॥ सेर, पुष्करमूल १। सेर, चित्रक १। सेर, धमासा १० छटांक, गिलोय, १ सेर, इन्द्रायण २० तोले, खैर छाल ३२ तोले, बिजौरा निंबू की छाल १६ तोले, मजीठ, मुलहठी कुष्ठ, कैथ, देवदारु, विडङ्ग, चव्य, लोध्र, भारङ्गी, एलवालुक, मोथा, पिप्पली, सुपारी, कचूर, पद्माक, प्रियङ्गु, सारिवा, जटामांसी, नागकेसर, संभालू के बीज, निशोथ, हलदी, रास्ना, मेढासिङ्गी, पुनर्नवा, सौंफ, कुटकी, और दन्तीमूल, प्रत्येक ४ तोले ।

क्वाथ्य जल—५ मन ८ सेर ।

शेष जल—१ मन १२ सेर ।

मधुर द्रव्य—गुड़ २० सेर ; मधु १ सेर १० छटांक ।

प्रक्षेप द्रव्य—मुनक्का ३ सेर, धावे के फूल १॥ सेर, पिप्पली ८ तोले, जायफल, लौंग, दालचीनी, बड़ी इलायची,

तेजपत्र, नागकेसर, तथा कस्तूरी प्रत्येक १ तोला।

संधानावधि—पन्द्रह दिन।

उपयोग—हरीतकी और आमलकी दोनों उत्तम रसायन हैं। ऋषियों ने इनके अनेक रसायन योगों का वर्णन किया है। चरक संहिता के प्रसिद्ध ब्राह्मरसायन में ये दो औषधियाँ आधारभूत हैं।

यह आसव भी उत्तम रसायन है। इसके सेवन से अग्नि विकृति दूर होती है, और दोष सम होते हैं। परिणामतः यह आसव अग्निमान्द्य, अपचन, अरुचि, अर्श, उदररोग, प्रमेह, कास, श्वास और शोप आदि रोगों को दूर कर शरीर में बल और वीर्य की वृद्धि करता है। मात्रा—१। से २॥ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—पात्र में बालछड़ तथा काली मिरच की धूनी देकर आसव का घोल डालें। गुड़ तथा मधु आधा आधा करके दो बार में मिलाना चाहिये। किण्व दो सेर डालें।

मद्य द्वारा बने आसव

अहिफेनासव

(भैषज्यरत्नावली)

तुलां मधूकमद्यस्य शुभे भाण्डे परिक्षिपेत् ।
फणिफेनस्य कुडवं मुस्तकं पलसम्मितम् ॥
जातीफलञ्चेन्द्रयवं तथैलां तत्र दापयेत् ।
रुद्ध्वा भाण्डं मासमात्रं यत्नतः परिरक्षयेत्॥
हन्त्यतीसारमत्युग्रं विषूचीमपि दारुणाम् ॥

औषध द्रव्य—अफीम १६ तोले, नागरमोथा, जायफल, इन्द्रजौ, और बड़ी इलायची, प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण ४ तोले ।

द्रव द्रव्य—महुए की सुरा ५ सेर ।

सन्धानावधि— एक मास लिखी है; परन्तु सात दिन पर्याप्त हैं ।

उपयोग–यह उग्र अतिसार, शूल और हैज़े में अत्यन्त हितकर है । मात्रा-१० से ३० बूंद; सौंफ के अर्क या जल में मिला कर आवश्यकतानुसार दिन में दो तीन वार देना चाहिये । अनेक वार देना हो तो मात्रा यथा सम्भव कम देनी चाहिये ।

असृग्घरारिष्ट

(भैषज्यरत्नावली)

असृग्घ्नीस्वरसं चैत्र मृतसंजीवनी तथा।
पलमेकं समादाय प्रत्येकं मानतो भिषक्॥
मृदा लिप्तमुखे भाण्डे स्थापयेत् सप्त वासरान्।
ततः स्थूलपटापूतः शीतलेन जलेन च॥
सेव्यो माषमितो नित्यं यामे यामे प्रयत्नतः।
उरः क्षतं रक्तपित्तं कासरक्तातिसारकम्॥
नाशयेद् राजयक्ष्माणं रक्तप्रदरमेव च॥

औषध द्रव्य—असृग्घ्नी का रस ४ तोले।

द्रव द्रव्य—मृतसंजीवन सुरा ४ तोले।

सन्धानावधि—दोनों को कांच के पात्र में डाल कर मट्टी से मुख बंद कर सात दिन धूप में रखें।

उपयोग—यह अरिष्ट उरःक्षत, रक्तपित्त, कास, रक्तातिसार, राजयक्ष्मा और रक्तप्रदर में उपयोगी है। मात्रा-१० से ३० बूंद; ठण्डे जल में मिलाकर आवश्यकतानुसार दिन में तीन चार बार पिलाएं।

विशेष द्रष्टव्य—असृग्घ्नी एक संदिग्ध पदार्थ है। इसका अर्थ बंगला-अनुवाद में विशल्यकरणी किया गया है। परन्तु वह भी स्पष्ट नहीं है। कुछ वैद्य मजीठ या विजैसार गोंद का ग्रहण करते हैं। हमारी सम्मति में इसे यदि वासे के स्वरस से

बनाया जाए तो यह रक्तपित्त, उरः क्षत, कास और यक्ष्मा के रोगियों के लिए विशेष लाभदायक सिद्ध होगा।

कर्पूरासव

(भैषज्य रत्नावली)

तुलां प्रसन्नां परिगृह्य शुद्धां पलाष्टकं चोडुपतेः क्षिपेच्च।
एला च सूक्ष्मा घनश्रृङ्गवेरे यमानिका वेल्लजमत्र सर्वम् ॥
पल प्रमाणं पिहिते च भाण्डे मासं निदध्याद् भिषगत्र यत्नात्।
विषूचिकायाः परमौषधं तन्निहन्ति चान्यान् विविधान् विकारान् ॥

औषध द्रव्य—कर्पूर ३२ तोले, छोटी इलायची, नागरमोथा, सोंठ, अजवायन और काली मिरच प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण ४ तोले।

द्रव द्रव्य—मद्य या रेक्टीफाइड स्पिरिट ५ सेर।

सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग—यह हैजे की उत्कृष्ट औषध है। वमन, अतिसार, उदरशूल प्रवाहिका और दांत या दाढ़ की दर्द, इन सब को यह दूर करता है। मात्रा-१० से २० बूंद बताशे या मिश्री के साथ दिन में तीन चार वार दें। दांत के दर्द में रुई के फाहे को इसमें भिगो कर दांतों में रखें।

मृगमदासव

(भैषज्यरत्नावली)

मृतसंजीवनी ग्राह्या पञ्चाशत् पल सम्मिता ।
तदर्धं मधु संग्राह्यं तोयं मधुसमं तथा ॥
कस्तूरीकुडवं तत्र मरिचं देवपुष्पकम् ।
जातीफलं पिप्पलीत्वग्भागान् द्विपलिकान् क्षिपेत् ॥
भाण्डे संस्थाप्य रुद्ध्वा च निदध्यान्मासमात्रकम् ।
विषूचिकायां हिक्कायां त्रिदोषप्रभवे ज्वरे ॥
वीक्ष्य कोष्ठं बलञ्चैव भिषङ् मात्रां प्रयोजयेत्॥

औषध द्रव्य—कस्तूरी १६ तोले, मिरच, लौंग, जायफल, पिप्पली, और दालचीनी प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण ८ तोले।

द्रव द्रव्य—मृतसंजीवनी सुरा (अभाव में रेक्टीफाइड स्पिरिट) २॥ सेर; जल १। सेर।

मधुर द्रव्य—मधु १। सेर।
सन्धानावधि—एक मास।

उपयोग—हैज़ा, हिचकी, और निमोनिया आदि सन्निपात-ज्वरों में हृदयावसाद नाडी की क्षीणता, तथा बढ़े हुए वात-प्रकोप को शान्त करने के लिए यह आसव अत्यन्त लाभदायक है। मात्रा–१० से ३० बूंद; जल में मिला कर दिन में दो तीन वार देना चाहिये। रोगी की नाज़ुक अवस्था में आध आध घण्टे के अन्तर से दें।

विशेष द्रष्टव्य—इसे कांच के पात्र में बनाना चाहिये; और उसका मुख बंद कर देना चाहिए। पात्र को धूप में रखें और हिलाते रहें। यह आसव धूप में रखने से सात दिन में बन जाता है। आसव के तय्यार हो जाने पर उसे फिल्टर पेपर से छान कर बोतलों में बंद करके रखलें।

रसोन सुरा

(चक्रदत्त)

वल्कलायाः सुरायास्तु सुपक्वायाः शतं घटे।
ततोऽर्धेन रसोनन्तु संशुद्धं कुट्टितं क्षिपेत् ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलमजाजीकुष्ठ चित्रकम्।
नागर मरिचं चव्यं चूर्णितञ्चाक्षसम्मितम् ॥
सप्ताहात् परतः पेया वातरोगामनाशिनी।
कृमिकुष्ठक्षयानाह गुल्मार्शः प्लीह मेहनुत् ॥
अग्निसंदीपनी चैव पाण्डुरोगविनाशिनी ॥

औषध द्रव्य—कीकर की छाल से प्रस्तुत सुरा ५ सेर; छिलके से रहित शुद्ध लहसन की पीठी २॥ सेर; पिप्पली, पिप्पलीमुल, जीरा, कुष्ठ, चित्रक, सोंठ, मरिच, और चव्य, इन में से प्रत्येक का सूक्ष्म चूर्ण १-१ तोला।

सन्धानावधि—सात दिन। कांच के पात्र में डाल कर मट्टी से मुख बंद कर धूप में रखें।

उपयोग—यह सुरा अग्निदीपक और वातनाशक है।

इसके सेवन से वातरोग, आमवात, कृमि, कुष्ठ, क्षय, आफरा, गुल्म, अर्श, प्लीहवृद्धि, पाण्डु और प्रमेह आदि रोग दूर होते हैं। आमवात और उदरवात की यह विशेष औषध है। मात्रा–१० से २० बूंद जल में मिला कर दिन में दो तीन बार पिलाएं।

वासारिष्ट

(भैषज्य रत्नावली)

वासास्वरसमादाय मृतसंजीवनी समम्।
संमिश्र्य भिषगन्योन्यं वासरे शुभतारके॥
मृद्भाण्डे काचभाण्डे वा निरुध्य तन्मुखं दृढम्।
सप्ताहं स्थापयेत् तस्मात् पूतीकुर्यात्तु वाससा॥
वासारिष्टः सुसेव्योऽयं माषमात्रो दिने दिने।
एतत्सेवी सुपथ्याशी देवभूदेवभक्तिमान्॥
कासं श्वासं रक्तपित्तं कण्ठरोगमुरः क्षतम्।
अन्यांश्च विविधान् रोगान् जयेदाशु न संशयः॥

औषध द्रव्य—वासास्वरस और मृतसंजीवनी सुरा दोनों समान भागों में लेकर काचपात्र में डाल कर मुख मट्टी से अच्छी प्रकार बंद कर दें।

सन्धानावधि– सात दिन ; इसके पश्चात् कपड़े से छान कर बोतलों में भरलें।

उपयोग—वासा, कास, क्षय तथा रक्तपित्त की अमोघ

औषधि है। वासारिष्ट के सेवन से ये सब रोग शीघ्र ही दूर होते हैं। मात्रा-२० से ३० बूंद; जल मिला कर दिन में दो तीन वार मिलाएं।

विषमुष्टयासव

(श्री पं० घनानन्द जी पन्त विद्यार्णव देहली)

औषध द्रव्य--कुचला शुद्ध २ तोले, चिरायता, गिलोय नागरमोथा प्रत्येक १-१ तोला, और मुनक्का ४ तोले।

जल--२ सेर।

मधुर द्रव्य--गुड़ ३० तोला।

सन्धानावधि—सात दिन।

उपयोग—यह अग्निदीपक, तथा बलवर्धक और हृदयोत्तेजक है। प्रतिश्याय तथा ज्वर में हितकर है। किसी भी रोग के पीछे इसका सेवन करने से भूख बढ़ती है, अन्न का परिपाक ठीक होता है और निर्बलता दूर होती है। मात्रा २०से३० बूंद, जल में मिला कर दिन में दो तीन वार पिलाना चाहिए।

सूक्ष्मैलारिष्ट

(भैषज्यरत्नावली)

सूक्ष्मैलाया द्वे पले जातिकोषं स्थूलैला च धातकी देवपुष्पम्।
त्वक्केशरं क्षीरकाकोलिका च प्रत्येकशः कोलमानं प्रकुट्य॥

संजीवन्याः कौडवं तोयमर्धं स्निग्धे भाण्डे सर्वमेतन्निधाय।
पक्षं यावत् स्थापयेत् प्रावृतास्ये उद्धृत्यैन वस्त्रपूतं प्रयुञ्ज्यात्॥
मात्रा ज्ञेया माषकात् शाणमाना हन्याच्छीघ्रं शूलरोगं सुघोरम्।
रोगानन्यान् नीलकण्ठो यथाहीन् एलारिष्टो नीलकण्ठप्रणुन्नः॥

औषध द्रव्य—छोटी इलायची ८ तोले, जावित्री, बड़ी इलायची, धावे के फूल, लौंग, दालचीनी, नागकेसर और क्षीर काकोली प्रत्येक ६ माशे।

द्रव द्रव्य—मृतसंजीवनी सुरा १६ तोले; जल ८ तोले।

सन्धानावधि—पन्द्रह दिन।

उपयोग—यह उदर शूल, अपचन, वमन आदि रोगों में प्रशस्त है। मात्रा— २० से ३० बूंद।

मद्य और मधुर पदार्थ रहित आसव

आयामकाञ्जिक

(चक्रदत्त भैषज्य रत्नावली)

धान्यस्य दद्याद्यव शक्तुकानां पृथक् पृथक् चाढकसम्मितन्तु ।
मध्य प्रमाणानि च मूलकानि दद्याच्चतुः षष्टि सुकल्पितानि ॥
द्रोणेऽम्भसः प्लाव्य घटे सुधौते दद्यादिदं भेषजजातमुक्तम् ।
क्षारद्वयं तुम्बुरु बस्तगन्धा धनीयकं स्याद्विडसैन्धवञ्च ॥
सौवर्चलं हिंगु शिवाटिकाञ्च चव्यञ्च दद्याद् द्विपलप्रमाणम् ।
इमानि चान्यानि पलान्मितानि विजर्जरीकृत्य घटे क्षिपेच्च ॥
कृष्णामजाजीमुपकुञ्चिकाच्च तथासुरीं कारविचित्रकञ्च ।
पक्षस्थितोऽयं बलवर्णदेह वयस्करोऽतीव बलप्रदश्च ॥
काञ्जीवयामीति यतः प्रवृत्तस्तत्काञ्जिकेति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।
आयामकालाज्जरयेश्च भुक्तमायामकेति प्रवदन्ति चैनम् ॥
दकोदरं गुल्ममथ प्लिहानं हृद्रोगमानाहमरोचकञ्च ।
मन्दाग्नितां कोष्ठगतं च शूलमर्शोविकारान् सभगन्दरांश्च ॥
वातामयानाशु निहन्ति सर्वान् संसेव्यमानं विधिवन्नराणाम् ॥

औषध द्रव्य—जौं के सत्तू ३ सेर ४ छटांक, मध्यप्रमाण वाली मूलियों के टुकड़े ६ सेर ६ छटांक; यवक्षार, सर्जक्षार, नैपाली धनियां, अजवायन, धनियां, विडलवण, सैंधानमक, कालानमक, हींग, हिंगुपत्री, और चव्य; प्रत्येक ८ तोले; पिप्पली, श्वेतजीरा, कलौंजी, राई, चित्रक, और कालाजीरा; प्रत्येक ४ तोले।

द्रवद्रव्य—वाट्य अर्थात् यवमण्ड ६ सेर ६ छटांक; जल १ मन १२ सेर।

सन्धानावधि—पन्द्रह दिन।

उपयोग—यह दीपक-पाचक है। एक प्रहर में भोजन को पचा देने और किस किस को जिलाऊं अर्थात् जीवित करूं इस विचार से प्रवृत्त होने के कारण इस को आयामकाञ्जिक संज्ञा दी है। यह मन्दाग्नि, आनाह, शूल, अर्श, गुल्म तथा प्लीहा प्रभृति रोगों को नष्ट करती है। मात्रा-५ तोले।

विशेष द्रष्टव्य—निस्तुष कुटे हुए जौं को चौदहगुण जल में सिद्ध करके जो मण्ड तैयार होता है उसे वाट्य कहते हैं।

जम्बीरद्राव

(योगचिन्तामणि)

शतं जम्बीररसकं रामठं च पलद्वयम्।
सैंधवं च विडंगञ्च पृथग् दत्त्वा पलं पलम्॥
त्र्यूषणं पलमेकैकं सौवर्चलचतुष्टयम्।

यवानिका पलञ्चैकं कर्षमानचतुष्टयम् ॥
स्निग्धभाण्डे विनिक्षिप्य अश्वशालां निधापयेत् ।
एकविंशद्दिनं यावत् ततः सर्वं समुद्धरेत् ॥
सुचन्द्रे सुदिने लोके पूजयित्वा भिषग् गुरून् ।
यकृत् प्लीहामगुल्मं च विद्रध्यष्ठीलिकादयः ॥
वातगुल्ममतीसारं शूलं पार्श्वहृदामयान् ।
नाभिशूलं विबन्धं च आध्मानञ्च गुदोदरम् ॥
नश्यन्ति तस्य शीघ्रेण वातश्लेष्मामयाश्च ये ।
जीर्यन्ते तस्य कोष्ठे तु जम्बीरीद्रावसेवनात् ॥

औषधद्रव्य—हींग, घी में भूनी हुई ८ तोले; सेंधानमक, विडङ्ग, पिप्पली, सोंठ, मरिच प्रत्येक ४ तोले। कालानमक १६ तोले; और अजवायन ८ तोले।

सन्धानावधि—इक्कीस दिन; घुड़साल में दबाएं।

उपयोग—यह यकृत्, प्लीहा, आमविकार, वातगुल्म, अतिसार, कोष्ठशूल, आध्मान, और अन्य कोष्ठसंबन्धी वायु तथा कफ के रोगों में बहुत लाभदायक है। मात्रा-२ से ५ तोले।

तक्रारिष्ट

(चरकसंहिता; भैषज्यरत्नावली)

यमान्यामलके पथ्या मरिचं त्रिपलांशिकम् ।
लवणानि पलांशानि पंच चैकत्र चूर्णयेत् ॥

तक्रकसासुतं जातं तक्रारिष्टं पिवेन्नरः ।
दीपनं शोथगुल्माशः कृमिमेहोदरापहम् ॥

औषध द्रव्य—अजवायन, आमला, हरड़, मरिच प्रत्येक १२ तोले; और पाचों नमक प्रत्येक ४ तोले।

द्रव द्रव्य—मट्ठा ७ सेर। दही में चतुर्थांश जल मिला कर मथें। इसमें से घी पृथक् न करें।

सन्धानावधि—ग्रीष्म ऋतु में चार दिन: और शीत में सात दिन।

उपयोग—यह अग्नि दीपक है और ग्रहणी, शोथ, गुल्म, अर्श, उदरकृमि, प्रमेह तथा उदररोगों का नाशक है। मात्रा–२ से ५ तोले।

तक्रारिष्ट

(गदनिग्रह, अष्टाङ्गहृदय; योगरत्नाकर)

हपुषा सुषवी धान्यमजाजी कारवी शठी ।
पिप्पली, पिप्पलीमूलं चित्रको गजपिप्पली ॥
यवानी चाजमोदा च तच्चूर्णं तक्रसंयुतम् ।
मन्दाम्लकटुकं विद्वान् स्थापयेद् घृतभाजने ॥
व्यक्ताम्लकटुकं जातं तक्रारिष्टं मुखप्रियम् ॥
पाययेन्मात्रया कालेष्वन्नस्य तृषितं त्रिषु ॥
दीपनो रोचनो बल्यः कफवातानुलोमनः ।
गुदश्वयथु कण्ठार्तिनाशनो बलवर्धनः ॥

औषध द्रव्य— ह्राऊबेर, पिप्पली, कालाजीरा, पिप्पलीमूल, धनियां, चित्रकमूल, श्वेतजीरा, गजपिप्पली, कलौंजी अजवायन कचूर और अजमोद प्रत्येक ४ तोले।

द्रव द्रव्य—तक्र अर्थात् मट्ठा ६ सेर।

संधानावधि—ग्रीष्म ऋतु में चार दिन और शीत में सात दिन। अम्ल और कटुरस (चरपरापन) के तेज़ होजाने पर छान कर उपयोग में लाएं।

उपयोग—यह अग्निदीपक और रुचिवर्धक है। इसके सेवन से वायु का अनुलोमन और बढ़े हुए कफ का ह्रास होता है। यह अर्श और शोथ रोगों में लाभदायक है। मात्रा—२ से ५ तोले।

मस्त्वासव

(गदनिग्रह)

वंशपत्री प्रतीकाशमस्तुद्रोणे सुनिर्मले।
क्षिपेद् गुडतुलां भाण्डे वचाकुष्ठविलेपिते॥
तस्मिन् दद्यात् पिप्पलीनां प्रस्थं प्रस्थत्रयं तथा।
त्रिफलाया विडङ्गानां कुडवं मरिचस्य च॥
काश्मरीफलमृद्वीका परुषकफलानि च।
वत्सकस्य च बीजानि दद्यान्मरिचवत् समान॥

पञ्चमूलं च षड्ग्रन्थां दन्ती चित्रकमेव च ।
भल्लातकानां च पले द्वे द्वे समुपकल्पयेत् ॥
यवपल्ले स्थितः पेयोऽरिष्टो मात्राबलं प्रति ।
पाण्डुरोगोदरहरो ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥
परं भगन्दर प्लीह शोष कासामयापहः ।
अग्निसंदीपनः पथ्यो बाधिर्यस्थौल्यनाशनः ॥
मस्त्वासव इति ख्यातो लेखनो मेदुरे हितः॥

औषध द्रव्य—पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, तथा आमला, प्रत्येक १३ छटांक, विडङ्ग, मिरच, गभारी फल, मुनक्का, फालसा, इन्द्रजौं प्रत्येक १६ तोले, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, गोखरू, बड़ी कटहली, छोटी कटहली, पिप्पलीमूल, दन्तीमूल, चित्रकमूल, और शुद्ध भिलावे, प्रत्येक ८ तोले ।

द्रव द्रव्य—श्वेत और स्वच्छ दही का तोड़ अर्थात् पानी १३ सेर ।

मधुर द्रव्य— गुड़ ५ सेर ।

संधानावधि—पन्द्रह दिन ।

उपयोग—यह अग्नि दीपक है और ग्रहणी, अर्श, उदर रोग, पाण्डु, प्लीहा, भगन्दर, शोष, कास, स्थूलता आदि रोगों को दूर करता है । मात्रा—२ से ५ तोले ।

विशेष द्रष्टव्य—पात्र में वचा और कुष्ठ का लेप करें । और जौं की ढेरी में दबादें ।

अकारादि क्रम से

आसव-अरिष्ट-सूची

संख्या	नाम आसव-अरिष्ट	पृष्ठ	अधिकार
१५	एलाद्यारिष्ट	२०६	मसूरिका
१६	करञ्जाद्यरिष्ट	१६०	उदर
१७	करञ्जारिष्ट	१५६	उदर
१८	कनकासव	१३१	कास-श्वास
१९	कर्पूरासव	२४३	अग्निमान्द्य
२०	कनकारिष्ट	८६	अर्श
२१	कनकारिष्ट	१९७	कुष्ठ
२२	कनकबिन्द्वरिष्ट	१९८	कुष्ठ
२३	कार्पासारिष्ट	२०९	स्त्री रोग
२४	कुटजारिष्ट	७५	अतिसार
२५	कुमार्यासव	१४७	गुल्म
२६	कुमार्यासव	१४८	गुल्म
२७	कुमार्यासव	१५०	गुल्म
२८	कुमार्यासव	१५३	गुल्म
२९	कुमार्यासव	१६१	उदर
३०	कुब्जकासव	७१	ज्वर
३१	कूष्माण्डासव	११३	राजयक्ष्मा
३२	कूष्माण्डासव	१३१	कास-श्वास
३३	खर्जूरासव	११५	राजयक्ष्मा
३४	खर्जूरासव	११६	राजयक्ष्मा
३५	खदिरारिष्ट	१९९	कुष्ठ
३६	खदिरासव	२०१	कुष्ठ